अर्थात् "यदि भारतवर्ष में कोई ऐसा मनुष्य था जो चौबीसों घंटे भारतवर्ष ही का हित-चिन्तन करता था वह मिस्टर रानाडे थे।"

यदि सच पूछिये तो देश की वर्त्तमान जागृति के मुख्य कारण ज० रानाडे ही थे।

जिस महात्मा ने पहले पहल अपने देश की गिरी हुई दशा का विचार कर के, विविध प्रकार से उसे उ-नत करने, तथा अन्य लोगों को उस में सहायक बनाने के प्रयत्न में अपने अमूल्य जीवन का बहुत अधिक अंश लगा दिया, अवश्य ही उस महात्मा का जीवन-चरित्र देश के प्रत्येक शुभचिन्तक के लिए बहुत कुछ उपदेशप्रद हो सकता है। खेद की बात है कि महात्मा महादेव गोविंद रानाडे का विस्तृत और क्रमबद्ध जीवन-चरित्र अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। परन्तु यह पुस्तक, जिस में विशेषतः उनकी घरू बातों का वर्णन है उनकी जीवनी के अभाव को तो बहुत से अंशों में पूरा करती ही है, साथ ही कई बातों में उस से कहीं अधिक उपयोगी और शिक्षाप्रद भी है। विद्वानों का मत है कि किसी व्यक्ति के सार्वजनिक जीवन की अपेक्षा उस का नैतिक या गार्हस्थ्य-जीवन,—यदि वह पवित्र और निष्कलङ्क हो—बहुत अधिक महत्वपूर्ण और शिक्षाप्रद होता है;

रा० ब० जस्टिस

महादेव गोविन्द रानाडे

एम. ए., एल एल. बी., सी. आई. ई.।

अनुवादक

काशी-निवासी बाबू रामचन्द्र वर्म्मा

प्रकाशक

कुंवर हनुमन्त सिंह रघुवंशी।

राजपूत ऐंग्लो-ओरियण्टल प्रेस, आगरा।

प्रथमावृत्ति] फर्वरी १९१४ [मूल्य ॥)

वहां अपना व्यवहार ऐसा रखना, जो तुम्हारी कुलीनता को शोभा दे। दूसरे यह कि चाहे जो हो, परन्तु कभी स्वामी के सामने किसी की चुगली न खाना। चुगली से परिवार का ही नही, राज्य तक का नाश होजाता है। इन दो बातो का ध्यान रखोगी, तो तुम्हे किसी बात की कमी न होगी। तुम भाग्यवान् हो। यदि तुम सहनशील बनोगी, तो तुम्हारा उचित आदर होगा, और तभी हमारे घर में तुम्हारा जन्म होना सार्थक होगा। हमारी बातों का ध्यान रखना। यदि हम कभी इस के विरुद्ध कुछ सुनेंगे, तो कभी तुम्हें अपने घर न बुलावेंगे।' पिता जी तीव्रस्वभाव और दृढ़निश्चयी थे, इसलिए मुझे पक्का विश्वास था कि जो कुछ वह कह देंगे वही करेंगे। इसलिए उनकी बातें मेरे मन में जम गईं और मैने सदा दोनो बातो का पालन किया। मैं मन ही मन रोती और किसी से कुछ न कहती, इसलिए कभी कभी मेरा सूखा मुंह देख कर आप भी मेरे मन की बात समझ जाते। परन्तु ऊपर कमरे में जाते ही मै दिन भर का सारा दुःख भूल जाती, और आनन्द से अपना समय बिताती। आप मुझ से बहुत पूछते, परन्तु मैं असली भेद जरा भी न बतलाती। क्योंकि मुझे भय था कि यदि एक बात भी मेरे मुंह से

मास्टर से डाक जल्दी देने के लिये रोज कहता हूं परन्तु वह अब तक कुल डिलिवरी का काम नहीं कर लेते, तब तक मुझे डाक नहीं देते।' आप ने समझ लिया कि कोई न कोई कार्रवाई इस सम्बन्ध में अवश्य होती है।

कोई दो महीने बाद, एक दिन वहां के असिस्टैण्ट कलेक्टर हमारे यहां आये, और आप को अपनी गाड़ी पर बैठा कर, अपने साथ हवा खाने ले गये। लौट कर आपने मुझ से कहा—'हमारा ख्याल ठीक था, डाक देर से लाने में सिपाही का कोई दोष नही था। आज साहब कहते थे कि इधर कुछ दिनों से मैं आप का अविश्वास करने लगा था, जिस का मुझे बहुत दुःख है।' इस के बाद बहुत देर तक आप मुझे यह समझाते रहे कि पूना वालों पर सरकार क्यो अविश्वास करती है, और उन के साथ कैसी २ चालें होती हैं। उस समय मैं भी समझ गई कि पूना वाले हम लोगों को क्यों सावधान रहने के लिए लिखा करते थे। इस के सिवाय हमारे यहा दूसरे तीसरे दिन वासुदेव बलवन्त फड़के या हरि दामोदर के हस्ताक्षर की चिट्ठिया आती थी; जिन में लिखा रहता था कि कल अमुक स्थान पर बलवा होना निश्चय हुआ है, अमुक २ हत्यारे हम लोगो में आकर मिल गये हैं, इत्यादि। ऐसी चिट्ठियां क्यों की

प्रकाशक की कृतज्ञता।

सन् १९१२ के दिसम्बर मास में काशी-निवासी बाबू रामचन्द्र वर्म्मा का आगमन आगरे में हुआ। वे प्रायः डेढ़ मास यहां रहे। यहां पर उन्होंने अपने अवकाश के समय स्वर्गवासी जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे की जीवनी, जो श्रीमती रानाडे ने मराठी भाषा में लिखी है, का हिन्दी-मर्मानुवाद किया। पश्चात् आपने, अनुवाद-स्वत्व सहित, मुझे वह छापने के लिये दिया। नवीन प्रेस ऐक्ट के अनुसार यह बात भी मेरे लिये अति आवश्यक थी कि मैं श्रीमती रानाडे से भी इस हिन्दी भाषानुवाद के छापने का अधिकार प्राप्त करूं। दैवसंयोग से कुछ समय पीछे ठाकुर लाल सिंह जी हेडक्लर्क लैण्ड रिकार्ड्स आफ़िस रियासत इन्दौर आगरे आये। उन से मैंने इस पुस्तक की प्रशंसा करते हुए हिन्दी-अनुवाद के छापने की आज्ञा श्रीमती रानाडे से प्राप्त करने के विषय में ज़िक्र किया। आपने कहा कि मैं इन्दौर पहुंच कर आपका यह कार्य्य करा दूंगा। सौभाग्यतः श्रीमती रानाडे के सहोदर कनिष्ठ भ्राता (पण्डित केशवमाधव कुर्लेकर) ही इन्दौर में सैटिलमैण्ट आफ़िस में हेडक्लर्क हैं। आप से ही श्रीमती रानाडे को हिन्दी-अनुवाद छापने की

चार पांच दिन वाद पंडिता रमाबाई आकर अभ्यं-
कर के बाड़े में ठहरीं। उन के साथ, उन का एक मुंह-
बोला भाई, गरीब सा बंगाली, और उन की सवा वरस
की मनोरमा नाम की लड़की थी। हम सब उन से
मिली। इसी बीच में आप भी पूना आ गये और
पण्डिता बाई का पुराण सब से पहले हमारे ही घर हुआ।
इस के पश्चात् और लोगों के यहां भी, एक एक सप्ताह तक
पुराण होता रहा। मैं प्रति दिन उनका पुराण सुनने जाती।

नित्य दोपहर के समय, हमारे घर की स्त्रियां,
आस पास की स्त्रियों को इकट्ठा कर के, सारी दुनिया
की उलटी सीधी बातें किया करतीं। अब उन में
पण्डिता बाई की चर्चा होने लगी। सभी स्त्रियां उन के
विषय में मनमानी बातें कहतीं। यहां तक कि एक दिन
मुझ से भी उन्हों ने, पण्डिता के विषय में बहुत सी
कहनी अनकहनी सभी बातें कह सुनाईं।

एक दिन बात ही बात में पण्डिता बाई से मालूम
हुआ कि वह अंगरेज़ी की दूसरी किताब पढ़ती थीं,
परन्तु इधर उनकी पढ़ाई छूट गई है। मैंने उन्हें अपनी
पढ़ाई का हाल बता कर, उन्हें अपने घर आ कर पढ़ने
के लिए कहा, जिसे स्वीकार कर दो तीन दिन पीछे वह
हमारे यहां मिस हरफर्ड से पढ़ने के लिए आने लगीं।

आज्ञा प्राप्त करने के लिये पत्र लिखाया गया जिस का उत्तर श्रीमती रानाडे से मिला कि "हिन्दी अनुवाद छापने की आज्ञा रा० ब० लाला बैजनाथ जी को दी गई है। यदि वह न छापें तो आज्ञा मिल सकती है या लाला साहब से आज्ञा लेनी चाहिये।" निदान राय बहादुर लाला बैजनाथ साहब से इस विषय में प्रार्थना की गई। आपने सहर्ष उक्त पुस्तक के छापने की आज्ञा प्रदान की। हम राय साहब व श्रीमती रानाडे के विशेष कृतज्ञ हैं कि हम को अभिलषित पुस्तक के छापने का अधिकार देकर कृतार्थ किया। हम मिस्टर कुलैकर व ठाकुर लाल सिंह जी के भी अतीव अनुगृहीत हैं कि आप दोनों सज्जनों ने पुस्तक-प्रकाशन की आज्ञा दिलवाने में सहायता की।

अनुवादक महाशय के भी हम अनुगृहीत हैं कि ऐसी उत्तम पुस्तक का हिन्दी अनुवाद कर हम को उपकृत किया।

आगरा
१०-२-१९१४

प्रकाशक
हनुमन्त सिंह रघुवंशी

थी इस लिये मिस हरफर्ड छुड़ा दी गई।

हीरा बाग में सभ्य स्त्री पुरुषों की एक सभा हुई, जिस मे सरकार से लड़कियो के लिए हाई स्कूल बनाने की प्रार्थना की गई। उस सभा में तत्कालीन गवर्नर सर जेम्स फर्गुसन भी आये थे। उस दिन सभा में अंगरेजी एड्रेस पढ़ने का काम मुझे सौंपा गया। मेरे लिए इस प्रकार का यह पहला ही अवसर था; मैं घबड़ा कर काम बिगाड़ न दूं, इसलिए आप ने ही बहुत सरल भाषा में यह एड्रेस लिख दिया था। यद्यपि एक दो दिन पहिले, मैं उसे आठ सात बार पढ़ चुकी थी, परन्तु सभा वाले दिन जब मैं पढ़ने के लिऐ खड़ी हुई, तो मेरे हाथ पेर कांपने लगे। श्रीमती अन्नपूर्णा बाई भाण्डारकर ने मेरी यह गति देख, मुझे धैर्य दिया, और साहस पूर्वक पढ़ने के लिए कहा। मैं ने भी जी कड़ा कर के किसी न किसी प्रकार वह एड्रेस पढ़ सुनाया।

थोड़ी ही देर में हमारे घर खबर पहुंची, कि आज मैं ने हजारों आदमियों के बीच में धड़ाके से अंगरेजी एड्रेस पढ़ सुनाया। इस बात मे प्रशंसा भी भरी थी और व्यंग तथा निन्दा भी। हमारे घर में सब से बड़ी ताई-सास ही थीं। जिन्हें आप निज माता के मर जाने

अनुवादक का निवेदन ।

"The elements so mixed in him, that Nature might stand up and say to all the world,—this is a man"—*

Shakspeare.

सुप्रसिद्ध देशभक्त मि० गोखले सरीखे विद्वान् को भी जिस पुस्तक की भूमिका या प्रस्तावना लिखने का कोई कारण न मिले, उस पुस्तक के सम्बन्ध में मेरे समान अल्पज्ञ का कुछ कहना धृष्ठता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता। परन्तु अनुवादित पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ न कुछ कहना अनुवादक का एक प्रकार का कर्त्तव्य समझा जाता है, इसलिए तथा अन्य कई विशेष कारणों से मैं यह थोड़ी सी पंक्तियां लिखना आवश्यक समझता हूं।

महात्मा रानाडे केवल भारत के ही नहीं, बल्कि समस्त संसार के अमूल्य रत्नों में से थे। सुप्रसिद्ध महात्मा तिलक ने एक बार जस्टिस रानाडे की तुलना, उन के अगाध ज्ञान और राजनीति-कुशलता के कारण वृद्धराक मन्त्री, व वेदभाष्यकार माधवाचार्य्य से कर के "सर्वज्ञः

---

* उनमें ऐसे गुणों का सम्मिश्रण था कि प्रकृति भी एक बार समस्त संसार से कह उठती कि—यही एक मनुष्य है।

शेक्सपीयर

और क्षण भर आनन्द मिल जाता है; और बहुत देर तक उसी मूर्त्ति का ध्यान और चिन्तन होता रहता है। और यदि किसी कारणवश उस में कभी विघ्न हो जाय तो उस दिन मन को चैन नहीं मिलता।

रोज रात को भोजन के पश्चात् बालकों की पढ़ाई की पूछ ताछ होती, उस के बाद घंटे आध घण्टे घर के बड़े बूढ़ों से बात चीत कर के सोने के लिए ऊपर जाते, और वहीं कुछ पढ़ाई भी होती। पढ़ते पढ़ते ही नींद आ जाती। कुछ ऐसी आदत सी पड़ गई थी कि बिना इस के नींद ही न आती। साढ़े दस ग्यारह बजे सोते और तीन सवा तीन बजे नींद खुल जाती। उस समय बिछोने पर पड़े २ ईश्वर सम्बन्धी विचार होते। इस के बाद बिस्तर पर से उठ कर चार से पाच बजे तक ताली और चुटकी बजा कर तुकाराम के अभंगो का भजन करते। इसी बीच में कभी २ मुंह का उच्चारण बन्द हो जाता और अश्रुधारा बहने लगती। अभंग कहते समय कभी २ इस बात का भी ध्यान न रहता कि दोनों चरणो की तुक भी मिलती है या नहीं। एक बार एक अभंग का चरण कहते तो दूसरी बार किसी दूसरे अभंग का। जिस समय मन की स्थिति जैसी होती उस समय वैसे ही अभंग कहते। मैं कभी २ हँस कर

स हि माधवः" की उक्ति को उन पर घटाते हुए कहा था—"महादेव गोविन्द रानाडे स्वदेश के लिए अकेले जो काम कर गये हैं, उतना काम अन्य देशों में शायद बहुत से आदमियों ने मिल कर भी न किया होगा।" जिस समय समस्त देश निर्जीव सा हो रहा था और लोग अपना कर्त्तव्य बिलकुल भूल गये थे; उस समय जस्टिस रानाडे ने लोगों के कानों में संजीवन-मन्त्र फूंक कर देश और देशवासियों में जान डाली थी और चारों ओर फैला हुआ अन्धकार दूर किया था। उन्होंने अपना सारा जीवन स्वदेश के कल्याण की चिन्ता में ही बिता दिया था। वे केवल चिन्ता कर के ही चुप नहीं हो रहे, बल्कि उन्होंने स्वदेशोन्नति के अनेक साधन भी लोगों के सामने प्रत्यक्ष उपस्थित कर दिये थे और उस में सहायता पहुंचाने के लिए उन्होंने बहुत से लोगों को भी उस में लगा दिया था। वह दृढ़निश्चयी इतने थे कि लोगों द्वारा राजविद्रोही संस्था कहे जाने पर भी, स्वयं सरकारी नौकर हो कर, अपनी स्थापित "सार्वजनिक सभा" से उन्होंने सम्बन्ध नहीं छोड़ा था।

कांग्रेस के जन्मदाता मि० ए० डब्ल्यू० ह्यूम ने एक बार उन के सम्बन्ध में कहा था :—

"If there was one man in India, who for the whole 24 hours in the day, thought of his country, that man was Mr. Ranade."

न देना चाहिए। काम करने वाले आदमी प्रायः क्रोधी
ही होते है।'

उस दिन मैं ने काशीनाथ की बीमारी का हाल
आप से नही कहा। दूसरे दिन मैं स्वयं हिन्दू अस्प-
ताल में गई। पहले मैं ने केशव को देखा। उस के बः
गिलटिया निकली थी। इस के बाद काशीनाथ के पास
गई। उसे १०५ डिग्री बुखार था। वह बदहवास था।
मैं ने उस से तबीअत का हाल पूछा, तो वह हँस कर
बोला—'तुम आ गई? तुम्ही को मेरा हाल लेने के लिए
भेजा है?' मैंने कहा—'हा, आप भी कोर्ट जाते समय तुम्हें
देखने आवेंगे।' यह सुन कर वह डाक्टर पर बिगड़ कर
बोला—'Look at my master, how kind he is especially to
me He has sent his own wife to see me in this Plague
Hospital. Besides he is personally coming to see me. He
would have come even yesterday, but busy as he is,
gets no time You know, he is always busy in the day
and night, till he gets fast asleep I am his reader, you
know I read so many hours a day. I never sit still
but you have made me prisoner Don't you know who
I am? I am Justice Ranade's reader He will never
do without me I am his Private Secretary Don't you
know whose man I am? Will he like if I sit still doing
nothing? I must get up and attend to my work I shall
not listen to anybody [अंगरेज़ी में उसने जो कुछ कहा

उद्विग्न था इसीलिए मैं ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मुख-शुद्धि के लिए फल और सुपारी देकर मैं ऊपर चली गई और किवाड़ बन्द कर एक घण्टे तक वहीं पड़ी रही। जब मुझे अपने पागलपन का ध्यान आया तो मैं अपने आप को बुरा भला कहती हुई नीचे उतरी। कभी आशा और कभी निराशा और उस के बाद कुकल्पना ने मुझे पागल कर दिया था। किसी काम में मन नहीं लगता था। कभी स्त्रियों में जा बैठती और कभी आप के पास दीवानखाने में चली जाती। मैं बहुत चेष्टा करती थी कि इस दुष्ट मन में टेढ़ी मेढ़ी कल्पनाएँ न उठें परन्तु वह मानता ही न था। मैं किस की शरण जाऊं? मेरा संकट कौन दूर करेगा? ईश्वर मेरी लाज तेरे हाथ है। आज तक कैसी कैसी बीमारिया हुई परन्तु तू ने ही समय २ पर रक्षा कर के मुझे जिस भाग्य-शिखर पर चढ़ाया है, आज क्या उसी शिखर पर से तू मुझे नीचे ढकेल देगा? नही, मुझे विश्वास है कि ऐसा नही होगा। नारायण! मेरे होश संभालने के समय से मेरे सारे सुख और आनन्द का केन्द्र यहीं रहा है, इसलिए तू ही इसे संभाल। मुझे शान्ति दे। इस से अधिक सुख मैं ने किसी बात में नहीं माना। संसार में बालबच्चों की कमी कभी मेरे विचार में भी न आई। मैं इसी सहवास में सन्तुष्ट

क्योंकि किसी व्यक्ति की वास्तविक योग्यता और उस के आशयों की उदारता को भली भांति प्रकट करने में उस का नैतिक या गार्हस्थ्य-जीवन-क्रम ही अधिक सक्षम और समर्थ हो सकता है, सार्वजनिक जीवन नहीं। इस पुस्तक में महात्मा रानाडे का गार्हस्थ्य-आयुष्य-क्रम ही वर्णित है; यही कारण है कि उन के साधारण जीवन-चरित्र की अपेक्षा कई अंशों में यह पुस्तक अधिक उपयोगी कही गई है। आशा है कि केवल नैतिक या गार्हस्थ्य-जीवनक्रम पर ही ध्यान रखने वाले पाठक इस पुस्तक में बहुत अधिक काम की बातें पावेंगे।

श्रीमती रमाबाई रानाडे भी निस्सन्देह उन को बहुत ही अनुकूल और योग्य धर्म्मपत्नी मिली थीं। यद्यपि महात्मा रानाडे और श्रीमती रानाडे के धार्म्मिक विचारों में कुछ अन्तर था तो भी जिस योग्यता पूर्वक उन दोनों ने दाम्पत्य-धर्म्म का निर्वाह किया वह आज कल के नये विचारों के बहुत से पुरुषों और स्त्रियों के लिए आदर्श हो सकता है। अनेक कठिनाइयां सह कर भी पतिदेव की प्रसन्नता के लिए जिस प्रकार श्रीमती रानाडे ने विद्योपार्जन किया और नई रोशनी से चारों ओर से घिरी होने पर भी उन्हों ने जिस प्रकार अपना समस्त जीवन पति-सेवा में व्यतीत किया वह आज कल

की नई पढ़ी लिखी स्त्रियों के लिए अनुकरणीय है।
इस पुस्तक में ये दो बातें ही ऐसी हैं जिन के कारण यह पुस्तक पुरुष, स्त्री, बालक, बालिका, वृद्ध, युवा सबों के लिए ही यथारुचि थोड़ी बहुत उपादेय हो सकती है। ऐसी उत्तम मूल-पुस्तक देख कर मैं ने उस का अनुवाद हिन्दी-पाठकों की सेवा में उपस्थित करना अपना कर्तव्य समझा और यदि इस अनुवाद के प्रकाशित करने की आज्ञा लेने में कठिनाई न आ पड़ती तो यह पुस्तक अब से बहुत पहले हिन्दी-पाठकों के हाथ में पहुंच जाती।

श्रीमती रानाडे ने अपनी स्वर्गीया ज्येष्ठा कन्या सखूताई विद्वांस के आग्रह करने पर मूल पुस्तक अपनी मातृभाषा मराठी में लिखी थी परन्तु दुर्दैववश पुस्तक प्रकाशित होने से पूर्व ही श्रीमती सखूताई का शरीरान्त हो गया। मूलपुस्तक इन्हीं सखूताई को समर्पित हुई है।

जिस प्रकार किसी वास्तविक पदार्थ के गुण उस के छाया-चित्र में नहीं आ सकते उसी प्रकार यदि मूल-पुस्तक के गुण इस अनुवाद में न आ सके हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। साथ ही कई विशेष कारणों से और कहीं कहीं अपनी इच्छा के विरुद्ध भी मुझे कई अंश छोड़ देने पड़े हैं। इसलिए तथा मराठी भाषा

भली भांति न जानने के कारण यदि इस अनुवाद में कुछ त्रुटियां रह गई हों तो उन के लिए मैं योग्य पाठकों से क्षमा प्रार्थना करता हूं।

विनीत

रामचन्द्र वर्मा।

प्रस्तावना।

स्वर्गीय जस्टिस रानाडे सम्बन्धी ग्रन्थ, और वह भी श्रीमती रानाडे का लिखा हुआ,—ऐसी दशा में, इस ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखनेका कोई वास्तविक कारण नहीं। किन्तु श्रीमती रानाडे की इच्छा भी एक प्रकार की आज्ञा ही है, जिस का उल्लंघन न कर सकने के कारण यह पंक्ति लिखी जा रहीं हैं।

राव साहब रानाडे, उन्नीसवी शताब्दि के अन्तिम तीस वर्षों में पहले तो महाराष्ट्र प्रदेश और फिर समस्त भारत के, राष्ट्रोन्नति सम्बन्धी अनेक प्रकार के आन्दोलनों के केवल आधार-स्तम्भ ही नहीं, बल्कि आद्य-प्रवर्त्तक थे। उनकी विशाल, व्यापक और तेजस्वी बुद्धि, अगाध ज्ञान, और अलौकिक आकर्षण शक्ति, पूर्ण रूप से देशसेवा की ओर ही लगी रहती थी। अपनी आर्य्य-भूमि को सर्वाङ्गसुन्दर बनाने, सामाजिक, राजकीय, धार्म्मिक, नैतिक, औद्योगिक आदि विषयों में उन्नति करने और समाज के लोगों को तदर्थ योग्य बनाने की चिन्ता के अतिरिक्त, आपको और कोई काम ही नहीं था। राव साहब रानाडे की गणना, केवल भारत ही

नहीं बल्कि समस्त जगत् के अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुषों में की जाती है; परन्तु इसका कारण उनकी स्वदेशभक्ति नहीं बल्कि बुद्धि-वैभव और विद्वत्ता थी। उन के ये सभी गुण असामान्य थे। और वे भी इतने असामान्य कि उन में से किसी एक के कारण ही बहुत से लोगों ने संसार में बहुत बड़ा नाम पाया। उन के समान चित्त-वृत्ति बड़े बड़े साधु सन्तों के अतिरिक्त और किसी में नही पाई जाती। उनकी चित्तवृत्ति में अनेक सात्विक गुणों का पूर्ण विकास था, जो उन में होनेवाले ईश्वरीय अंश का बहुत अच्छा प्रमाण है। यदि आप का जन्म कुछ शतक पूर्व हुआ होता, तो निस्सन्देह आपकी गणना अवतारों में होती। वर्त्तमान काल में जिस राष्ट्र को ऐसी विभूति प्राप्त हुई हो, उस की भावी स्थिति के सम्बन्ध में निराश होने का कोई कारण नहीं है।

राव साहब के सार्वजनिक कामों की व्यापकता इतनी विस्तृत है कि उस का पूरा वर्णन करने के लिये इस देश का तीस वर्षों का पूरा इतिहास लिखना पड़ेगा; और बड़ी २ सार्वजनिक संस्थाओं और आन्दोलनों का पूरा विवरण देना होगा। यह काम सहज नही है; तो भी राष्ट्रहित की दृष्टि से और भावी सन्तान को मार्ग दिखलाने के लिये करना ही पड़ेगा। जिन लोगों को

राव साहब के चरणों के समीप बैठकर देशभक्ति की शिक्षा ग्रहण करने का शुभअवसर प्राप्त हुआ है, और पुत्रवत् प्रेमपूर्वक, जिन लोगो के लिए, आपने सार्वजनिक कार्य्यों का मार्ग सुगम कर दिया है उन्ही लोगों के सिर पर यह पवित्र उत्तरदायित्व है। अब उन लोगों को अधिकार है कि जिस प्रकार चाहें, इस उत्तरदायित्व से उऋण हो। राव-साहब के लोकोत्तर गुणो के कारण, उनके जीवन का सार्वजनिक भाग जिस प्रकार महत्वपूर्ण और चिरस्मरणीय हुआ है, उसी प्रकार उन के सात्विक स्वभाव के कारण, उन का घरऊ आयुष्यक्रम (carrier) भी मनोहर और बोधप्रद हुआ है। उसी घरऊ आयुष्यक्रम का चित्र, श्रीमती रानाडे ने इस पुस्तक मे प्रदर्शित किया है।

साथ ही साथ इस पुस्तक में राव साहब के सार्वजनिक चरित्र का भी थोड़ा बहुत अंश आगया है। राव साहब देश-कार्य्य में दिन रात इतने अधिक मग्न रहते थे कि उन के घरऊ विचारों और व्यवहारों में भी सार्वजनिक कार्य्यों का समावेश हो ही जाता था। परन्तु श्रीमती रानाडे की इस पुस्तक का उद्देश्य, राव साहब के सार्वजनिक कार्य्यों का उल्लेख करना नही है, बल्कि उनके आयुष्यक्रम का साधारण चित्र, सर्व साधा-

रण के सामने उपस्थित करना है । यह पुस्तक राव साहब का क्रमबद्ध चरित्र नहीं है । समय २ पर होने वाली घटनाएँ, जो किसी कारणवश याद रह गई हैं, या और लोगों की ज़बानी जो बातें सुनी गई हैं, उन्हीं का उल्लेख इस पुस्तक मे है । अनुपम भक्ति और असीम प्रेम के कारण यह पुस्तक लिखी गई है । आशा है, आप लोग सहानुभूतिपूर्ण अन्तःकरण से इसे पढ़ेंगे ।

अपने पति के सम्बन्ध में पत्नी का लिखा हुआ, यह ग्रन्थ भारत में, अपने ढंग का एक ही है । इसका कारण यह है कि अन्य भारतीय स्त्रियों की अपेक्षा, इस की लेखिका श्रीमती रानाडे की योग्यता बहुत अधिक है । जिसने अपने जीवन के सत्ताईस वर्ष, उस महात्मा की सहधर्मिणी होकर व्यतीत किये हैं, जिस का नैसर्गिक तेज, उनकी शिक्षा और सहवास के कारण बहुत अधिक बढ़ गया है और जिस का मन राव साहब की भक्ति में सदा दृढ़ रहा है, उसीने अपने दिगन्तकीर्त्ति पति के स्वभाव और आयुष्यक्रम का चित्र इस पुस्तक में प्रदर्शित किया है । इसलिये ऐसी पुस्तक के पाठकों का अभिमान साहजिक ही है ।

इस पुस्तक के पढ़ने से, पाठकों के मन पर जिन बातों का प्रभाव होगा, उन में से दो एक का यहां उल्लेख

करना आवश्यक है। पश्चिमी समाज के अधिकांश परि-
वारों में दम्पती में बहुत अधिक प्रेम होता है; परन्तु
तो भी उन लोगों में प्रायः समानता का व्यवहार होता
है। किन्तु दम्पती में उसी प्रकार का प्रेम होते हुए भी
पत्नी का पति-सेवा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर
देने में ही अपने को धन्य समझना, पूर्वीय स्त्रियों और
उन में भी प्रधानतः भारतीय स्त्रियों का विशेष मनो-
धर्म है। यह मनोधर्म हजारों वर्षों के संस्कार और पर-
म्परा का फल है और इस पुस्तक में उस का अत्यन्त
मनोहर स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। विचारों और
आयुष्यक्रम पर नई शिक्षा, नई कल्पना और नई परि-
स्थिति का नया प्रभाव पड़ने पर भी श्रीमती रानाडे के
समान स्त्रियों का मनोधर्म ज्यों का त्यों बना रहता है,
इस से सब लोगों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। दूसरी
बात पाठकों के ध्यान रखने योग्य यह है कि, जिस
पीढ़ी के लोग अब धीरे धीरे उठते जा रहे हैं, उसे स्त्री-
शिक्षा आदि समाज सुधार के कामों में कितनी कठि-
नाइयां झेलनी पड़ी थीं। वर्त्तमान पीढ़ी को उन अड़-
चनों की अधिक कल्पना नहीं है, और यह भी स्पष्ट
ही है कि कुछ समय में शेष अड़चनें भी दूर हो जायँगी
किन्तु आरम्भ में लोगों को इस के लिए जो दुस्सह कष्ट

उठाना पड़ा, और उस की परवाह न कर, उन्हों ने समाज का जो उपकार किया, वह कभी भूलना न चाहिए। इन विचारों के जीवित रखने में, इस ग्रन्थ का बहुत अच्छा उपयोग होगा। श्रीमती रानाडे ने भी इसी अभिप्राय से यह पुस्तक लिखी है, इसलिए उन का अभिनन्दन करना आवश्यक है।

सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी
पूना, ता० २० अप्रेल १९१०. } गोपाल कृष्ण गोखले।

हमारे जीवन की कुछ बातें।

[१]

पूर्वपुरुष और बाल्यावस्था।

हमारे (रानाडे वंश के) पूर्वपुरुषों का मूल स्थान रत्नागिरी जिले के चिपलूण ताल्लुके का मोभार पाचेरी अथवा पाचेरिसड़ा ग्राम है। वहां से भगवन्तराव (आप के दादा के दादा) पंढरपुर के निकट करकंव ग्राम में आ कर रहने लगे। वह बड़े अच्छे ज्योतिषी थे। सुनते हैं, नाना फड़नवीस के सम्बन्ध में उन्हों ने जो भविष्यद्वाणियां कही थीं, वे बहुत ठीक उतरी।

भगवन्तराव के पुत्र भास्करराव उपनाम आप्पा जी, अपनी माता की अनेक सन्तानों में से अकेले बचे थे। उन के जीवन के लिए, लगातार बारह वर्षों तक उन की माता को अनेक प्रकार के कठिन व्रत करने पड़े थे। यह उसी महासाध्वी के पुण्य का फल है कि आज तक उन के वंश में सभी लोग बुद्धिमान्, शूर, पराक्रमी, उद्योगी और उदार हुए।

आप्पाजी भगवन्त सांगली संस्थान के प्रसिद्ध अधिपति चिन्तामणिराव के साथ रहते थे। एक बार मुगलों

से लड़ कर उन्हों ने एक किला भी जीता था और लूट का सारा माल अपने स्वामी के अर्पण कर दिया था। अपनी योग्यता के कारण वे सांगली की ओर से राज-दूत नियुक्त हो कर अंगरेजों के पास रहने लगे थे। वे सदा निर्भीकतापूर्वक अपने दृढ़ विचार प्रकट किया करते थे। सांगली में उन की प्राप्त की हुई जमीनें अब तक हम लोगों के अधिकार में ही हैं। अन्त समय तक उन के दांत तथा अन्य अवयव सब ठीक थे। पचानवें वर्ष की अवस्था में ईश्वर का नाम जपते हुए आप ने यह संसार छोड़ा था। आप ने अपना अन्तकाल पहले से ही अपने पुत्र को बतला दिया था।

आप्पा जी के ज्येष्ठ पुत्र, आप के दादा, अमृत-राव तात्या अंगरेजी राज्य के आरम्भ में, नगर जिले के सरिश्तेदार थे। इस के बाद आप पूना और पाबल में कुछ दिनों तक काम करते रहे, और वहीं से अन्त में आपने पेन्शन ली। हमारे पूज्य श्वशुर सहित आपके चार पुत्र थे। बड़े बलवन्तराव दादा, दूसरे गोविन्दराव भाऊ, तीसरे गोपालराव आने, और चौथे विष्णुपन्त अण्णा। गोविन्दराव और विष्णुपन्त कोल्हापुर में नौकर थे। और बलवन्तराव तथा गोपालराव अपने पिता के पास रहते थे। अमृतराव तात्या संस्कृत के अच्छे पण्डित थे।

आपने पुरुषसूक्त की टीका की थी, और आप को छपने के लिये दी थी, जिसे आप ने छपवाया भी था। इस के अतिरिक्त तात्याजी ज्योतिषी भी थे, और भागवत की कथा अच्छी तरह कहते थे।

मेरे पूज्य श्वशुर के घर में आप का जन्म १८ जनवरी सन् १८४२, मंगलवार को सन्ध्या समय हुआ था। आप की जन्मपत्रिका तात्याजी ने स्वयं बनाई थी।

सन् १८६८ में, कोल्हापुर में, मेरे श्वशुर के पास, ८० वर्ष की अवस्था में, तात्या जी का शरीरान्त हुआ। उस समय श्वशुर जी को २५०) मासिक वेतन मिलता था। जब आप की अवस्था २॥ वर्ष की थी, उस समय मेरी ननद दुर्गा आक्का का जन्म हुआ था। उस समय सास जी अपनी सास के (हमारी ददिया सास के) पास थीं। उस समय, जब सास जी आप को तथा मेरी ननद को ले कर मेरे श्वशुर के पास कोल्हापुर जा रहीं थीं, तब मार्ग में आप पर एक सङ्कट आया था, जो ईश्वर की कृपा से किसी प्रकार टल गया। रात का समय और बैलगाड़ी की सवारी थी। ऊंचा नीचा रास्ता होने के कारण गाड़ी को धक्का लगा, और आप नीचे गिर पड़े। उस समय गाड़ीवान तथा सिपाही भी सोये हुए थे, इस से आप के गिरने की किसी को खबर भी नहीं हुई। गाड़ी

मील डेढ मील चली गई। विट्ठल बाबा जी रानाडे, जो इस प्रवास में साथ ही थे, बहुत पीछे रह गये थे। विट्ठल काका के घोड़े की टाप का शब्द सुन कर आप ने उन्हें आवाज दी। उन्होंने भी आवाज पहिचान कर आप को उठा लिया और लेजा कर सास जी के सुपुर्द कर दिया।

तीन से तेरह वर्ष की अवस्था तक, आप कोल्हापुर में ही रहे। छः सात वर्ष की अवस्था से ही आप को मराठी की शिक्षा दी जाने लगी। आप की बाल्यावस्था की बातें ताई-सास के (सास की जेठानी) शब्दों में लिखना अधिक उत्तम होगा :—

"हम लोग कोल्हापुर में जिस कोठी में रहते थे। उसी में एक और सज्जन गृहस्थ आबा साहब कीर्त्तन भी रहते थे। दोनों ही परिवार ईश्वर-कृपा से बहुत बड़े थे। हमारे घर में स्याने और उन के घर में बाल बच्चे अधिक थे। हम लोगों में परस्पर बड़ा प्रेम था। किसी प्रकार का भेद भाव नहीं माना जाता था। कीर्त्तन के बाल बच्चे तो बहुत होशियार और तेज थे, परन्तु हमारा लड़का बिलकुल सीधा। उसे कुछ भी समझ न थी। परीक्षाएं हो चुकने पर, उन के लड़के तो घर आ कर, बड़ी प्रसन्नता से अपने पास होने

का समाचार सुनाते थे, और बहुत सी इधर उधर की बातें करते थे। परन्तु हमारा लड़का निरा गूंगा बना रहता था। हम लोग जब कहते कि—'अरे, माधव! तूने तो घर आ कर यह भी न कहा कि हम पास हो गये।' तो कहता—'इस में कहने की बात ही कौनसी है? जब रोज स्कूल जा कर पढ़ते हैं, तो पास तो होंगे ही। इस में कहने लायक नई बात कौनसी है?'

"इस की मा (हमारी सास) को तो इतनी चिन्ता थी कि यह पेट भरने के लिए १०) रु० मासिक भी पैदा न कर सकेगा। कीर्त्तन के लड़के तो बड़ी बड़ी बातें किया करते थे। परन्तु यह सदा गूंगा बना रहता था। बिलकुल सीधा था, इसे किसी बात की कुछ भी खबर नहीं थी। हां, एक बार जो बात समझा दी जाती थी, उसी के अनुसार सदा कार्य्य करता था। बचपन में दीवारों पर दिन भर केवल अक्षर और अङ्क ही लिखता रहता था। पाठशाला से आने पर इसे जो भोजन दिया जाता था उस में थोड़ा सा घी भी रहता था। एक दिन दूध से मक्खन नहीं निकाला गया था, इसलिये घी न दिया जा सका। उस ने घी मांगा, इसकी मां ने कह दिया कि घी नहीं है, कल मिलेगा, परन्तु इस ने एक न मानी। इस पर इस की मां ने

एक चमचा पानी भोजन में डाल दिया, और इस ने उसी को घी समझ कर खा लिया। दुर्गा ने हँस कर कहा भी—'भैया को तो मा ने घी के बदले पानी दे दिया।' परन्तु उस पर इस ने कुछ ध्यान न दिया।

"एक दिन यह सन्ध्या कर रहा था। विट्ठल काका ने बीच में रोक कर सन्ध्या के सम्बन्ध में इस से कुछ प्रश्न किया। उस का ठीक उत्तर देकर इसने कहा—अब हमें बताओ, सन्ध्या कहां से छोड़ी थी?' विट्ठल काका ने बहुत कहा कि तुम फिर से आरम्भ करो। परन्तु उस ने नहीं माना, जिद्द कर के बैठा ही रहा। अन्त में लाचार हो कर विट्ठल काका ने सन्ध्या के मध्य से कोई स्थल बतला कर कहा—'यहीं पर मैंने तुम्हे रोका था।' यह भी उसी पर विश्वास कर के वहीं से बाकी आधी सन्ध्या कर के उठ गया।

"बचपन में जेवर से इसे बड़ी चिढ़ थी। यदि बड़ी कठिनता से जेवर पहना भी दिये जाते तो गले में धोती लपेट कर गोप छिपा लेता था; हाथों के कड़े ऊपर सरका कर बाहों पर चढ़ा लेता था; अंगूठी का नग हथेली की तरफ कर के मुट्ठी बन्द कर लेता था। यदि इस से कहा भी जाता था कि तू क्यों ऐसा करता है, तो कहता—'रोज बाबा जी मधुकरी लेने आते हैं वह तो गहने नहीं पह-

नते।' यही सब इस के लक्षण थे। बुद्धि तो बिलकुल थी ही नहीं। यह तो भाग्यवश ही इस समय चार पैसे मिल रहे हैं।

"एक बार एक पर्व पड़ा। उस दिन लड़के इकट्ठा खेला करते थे परन्तु उस दिन घर के लड़के कुछ तो इधर उधर थे, और कुछ सो गये थे। यह अपने डण्डे ले जा कर खम्भों से ही खेलने लगा। इस पर मैं ने इसे चिढ़ाने की भी चेष्टा की, परन्तु अपने सरल स्वभाव के कारण इस ने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

"एक दिन इस की मा ने एक बरफी इसे दी, और दूसरे हाथ में आधी बरफी देकर कहा 'यह तू खाले और वह उस लड़के को दे दे।" इसने बड़ा टुकड़ा उस लड़के को दे दिया, और छोटा अपने मुंह में रख लिया। मां ने कहा—'अरे उस लड़के को तो छोटा टुकड़ा देना था।' माधव ने कहा—'तुमने इस हाथ का टुकड़ा उसे देने के लिये कहा, इसलिये मैं ने वही दे दिया।' मां ने भी समझ लिया कि मेरे कहने में ही भूल हुई।"

---

[२]

बम्बई में विद्याभ्यास और पहली नौकरी।

आप की अवस्था ग्यारह वर्ष की थी, और मेरी ननद दुर्गा की नौ वर्ष की। उसी वर्ष दुर्गा का विवाह

हुआ। इस के एक वर्ष बाद, पूरे दिनों से पहले ही आठवां बालक होने के कारण, सासजी का देहान्त हो गया। उस समय आप कोल्हापुर के अंगरेज़ी स्कूल मे भरती किये गये। इसी अवसर पर श्वशुर जी का दूसरा विवाह हुआ। और सन् १८५४ में तेरह वर्ष की अवस्था में वाई के मोरोपन्त दाण्डेकर नामक सज्जन की कन्या सखूबाई से आप का विवाह भी हो गया। विवाह के उपरान्त, कीर्त्तन के चारों लड़कों के साथ आप विद्या-भ्यास के लिये बम्बई भेजे गये।

बम्बई जाने से पूर्व, आबा साहब कीर्त्तन से आप रोज कहा करते थे कि हम लोगों को पढ़ने के लिए बम्बई भेज दो। यद्यपि श्वशुर जी आप से सदा सर-लता और प्रेमपूर्वक व्यवहार करते थे, तो भी कभी उनके सामने जाकर कुछ बात कहने की आपकी हिम्मत नहीं होती थी। भोजन के अतिरिक्त और किसी समय आप श्वशुर जी के सामने बैठना जानते ही न थे। जब बम्बई जाने के लिए आबा साहब से आप दो तीन महीने बराबर कहते रहे तो अन्त में सन् १८५६ मे सब प्रबन्ध ठीक कर के पांचों, विद्याभ्यास के लिये बम्बई भेज दिये गये।

सन् १८५९ में आप ने बम्बई विश्वविद्यालय की

मेट्रिकुलेशन परीक्षा पास की। इस से पूर्व ही एलफिन्स-टन इन्स्टिट्यूट से आप को पहले १०) फिर १५) और अन्त में २०) मासिक छात्रवृत्ति मिलने लगी थी। मैट्रि-कुलेशन परीक्षा पास कर चुकने पर तीन वर्षों तक आप को यूनिवर्सिटी से जूनियर फैलोशिप के लिए ६०) और फिर दूसरे तीन वर्षों तक सीनियर फेलोशिप के लिए १२०) मासिक मिलते रहे। मैट्रिकुलेशन के बाद सभी परीक्षाओं में आप का नम्बर सदा पहला ही रहता था। सन् ६२ में आप ने बी० ए० पास किया। उसी समय इतिहास तथा अर्थशास्त्र में ऑनर सहित पास होने के कारण आप को सोने का पदक और दो सौ रुपये की पुस्तकें इनाम में मिली। सन् ६४ में एम० ए० की डिग्री मिली। सन् ६२ से ही बम्बई के इन्दुप्रकाश पत्र के अंगरेजी अंश के सम्पादक भी हो गये थे तो भी आप ने विद्याभ्यास और पत्र-सम्पादन दोनों ही कार्य्य भली भांति किये। पहले ही वर्ष आपने "पानीपत की लड़ाई का शत-सांवत्सरिक दिन" शीर्षक एक अग्र लेख लिखा। इस लेख की ऐतिहासिक योग्यता और देश-प्रीति के कारण, सारे संसार की दृष्टि इस पत्र की ओर लग गई। विद्याभ्यास के साथ ही साथ आपको कालिज में पढ़ाना भी पड़ता था। परीक्षा के लिए अध्ययन भी

बहुत अधिक करना पड़ता था। इस लिये सन् १८६४ में आप की आंखें बिलकुल खराब हो गई, दृष्टि बिलकुल जाती रही। छः महीनों तक आंखों पर हरी पट्टी बंधी रही। डाक्टर ने आँख खोल कर देखने की बिलकुल मनाही करदी थी।

छः महीने तक आंखों से अधिक कष्ट पाने पर भी विद्याभ्यास नहीं छूटा। कभी २ इन के सहपाठी पढ़ते और आप सुनते थे। आंखों का यह कष्ट अन्त समय भी थोड़ा बहुत बना ही रहा। आनर सहित एल एल. बी. की परीक्षा में आप प्रथम हुए थे। एलफिन्स्टन कालेज में आप ने जिस योग्यता से अंगरेजी का अध्यापन किया था, उस के बदले में कालिज के प्रिन्सिपल, अन्य प्रोफेसरों तथा विद्यार्थियो ने मिल कर आप को ३००) के मूल्य की सोने की एक घड़ी दी थी।

सन् १८६६ में, शिक्षा-विभाग में एक्टिंग मराठी ट्रान्सलेटर के पद पर आप २००) मासिक पर नियुक्त हुए। इस के बाद कुछ दिनों तक अक्कलकोट में कारभारी और कोल्हापुर में मुन्सिफ के पद पर रहे। सन् ६८ से ७१ तक आप फिर एलफिन्सटन कालिज में ४००) मासिक पर अंगरेजी के प्रोफेसर रहे। इसी अवसरमें हाईकोर्ट के 'टर्म' पूरे करके आप एडवोकेट की परीक्षामें उत्तीर्ण हुए।

जिस समय आप कोल्हापुर में मुन्सिफ थे, उस समय श्वशुर जी भी वहां कारभारी के पद पर थे। परन्तु पहले की भांति, पिता पुत्र में मर्यादापूर्ण व्यवहार में कभी कुछ अन्तर न पड़ा। पिता अपने पुत्र की सत्यता और निस्पृहता से भली भांति परिचित थे, इसलिए वे किसी दूसरे के काम के लिए आप से कभी कुछ न कहते थे। कोल्हापुर में आप को आये अभी महीना सवा महीना ही हुआ था, कि आप के इज-लास में एक अभियोग उपस्थित हुआ। उस में प्रति-वादी एक योग्य गृहस्थ थे जो श्वशुर जी के परिचित थे, साथ ही दूर के नाते से उनका कुछ सम्बन्ध भी था। वह चाहते थे कि आप घर पर एक बार अभियोग का आदि से अन्त तक सच्चा हाल सुन लें और सब काग़ज़ आदि देख लें। इसी अभिप्राय से वे श्वशुर जी को साथ लेकर, आपके कमरे में गये। उन लोगों को देख कर आप उठ खड़े हुए। श्वशुर जी ने कहा—"आप कुछ कहा चाहते हैं, सो सुन लो।" आप को चुप देख कर उन सज्जन ने कहा—"मैं आज काग़ज़ात नहीं लाया। आप जब कहें ले आऊं।" इस पर आपने उत्तर दिया—'आज मुझे भी कार्य्य अधिक है। जब मुझे फ़ुरसत होगी, मैं आपको कहला दूंगा।' उन सज्जन के चले जाने पर

आपने नीचे जाकर पिताजी से नम्रता पूर्वक कहा—"मैं यहां नौकरी पर आया हूं। यहां सारा शहर आपका परिचित ही है, इसलिए सभी लोग आकर इस प्रकार आपको कष्ट देंगे। यह बात ठीक नहीं है। मुझे भी यहां से अपनी बदली करा लेनी पड़ेगी। किसी पक्ष के काग़ज़ात घर पर देखना, मेरे नियम के विरुद्ध है।" इस के बाद आप तीन चार मास तक कोल्हापुर में रहे परन्तु फिर कभी ऐसा प्रसंग नहीं आया।

इस के बाद पूना आने से पूर्व आपने एलफिन्स-टन कांलिज में प्रोफेसरी का काम किया। नवम्बर १८७१ में आप पूना में ८००) मासिक पर फर्स्ट क्लास सब-जज नियुक्त हुए। सन् १८७३ में आपकी पहली स्त्री का देहान्त होगया। पूना में कई महीने तक वह जीर्णज्वर से पीडित थीं। कई वैद्यों और डाक्टरों की चिकित्सा हुई परन्तु फल कुछ भी न हुआ। डाक्टरों ने क्षयरोग बतलाया। सेवा शुश्रूषा में आपको बहुत अधिक परि-श्रम करना पड़ा था। दिन भर कचहरी का काम और रात भर जागरण और औषधोपचार। परन्तु यह सब व्यर्थ हुआ और सन् १८७३ में उनका शरीरान्त होगया। इस कारण एक वर्ष तक आप बहुत ही दुःखी रहे। कोई दिन ऐसा नहीं बीता, जिस दिन, आपने उनके

लिए आंखों से जल न बहाया हो। रात को भोजनो-परान्त जब तक नींद न आती, आप तुकाराम के अभंग (पद) पढ़ते, और उन्ही में प्रेम के कारण मग्न होजाते। परन्तु मेरे विवाह के पीछे, सन्ध्या समय मुझे पढ़ाने में घण्टा डेढ़ घण्टा निकल जाता था। मैं अपने विवाह से पहले की बातें लिख रही हूं। इस से पहले इस अवसर पर यदि मैं अपने नैहर का थोड़ासा हाल लिखूं तो कुछ अनुचित न होगा।

मेरे पूर्वज सितारा जिले में देवराष्ट्र नामक स्थान के कुर्लेकर हैं। कुर्लेकरों का मूलस्थान रत्नागिरी जिले का नेवर ग्राम है। वहा से चलकर वे लोग औन्ध के निकट कुर्ले ग्राम में आ रहे और इसीलिए वे लोग कुर्लेकर कहाये। उन लोगो के मूल पुरुष का नाम बालंभट चिपोलकर था। उन्हीं के वंश में गणपतराव भाऊ बड़े योद्धा हुए। वह मेरे परदादा थे। वह शंकर के उपासक और बड़े मातृभक्त थे। बाल्यावस्था में एक बार क्रोध में उन्होने अपनी माता को कुछ कटु वचन कहे। अन्त में उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ और उन्होने गाव के बाहर एक शिवालय में जाकर अपनी जिह्वा काट डाली। तत्काल ही वह कटा हुआ टुकड़ा डाक्टर ने यथास्थान लगा दिया और जिह्वा ठीक होगई। गणपतराव

भाऊ के इकलौते पुत्र माणिकराव आबा थे। मेरे पिता सहित आबा के चार पुत्र और दो कन्याएँ थी। आबा जी ने उल्लेख योग्य कोई पराक्रम नहो किया। केवल अपने बड़ों की सम्पत्ति संभाल कर ही वह बैठे रहे। घर का सब काम मेरी दादी ही करती थी।

पिताजी पर मेरे दादा और दादी की विशेष प्रसन्नता रहती थी क्योंकि अपनी कुल के मर्य्यादानुसार, वे वीरों की भांति रहते थे। साथ ही वह उदार और धार्म्मिक भी थे। कष्ट पड़ने पर वे कभी घबड़ाते न थे और सदा ईश्वर पर विश्वास रखते थे। अपने मित्रों में वह अद्वैत मत सम्बन्धी चर्चा करते थे। मेरी माता के बीस सन्तानें हुई थीं, परन्तु उन में से केवल चार पुत्र और तीन कन्याएँ बची थीं।

मेरी माता का स्वभाव भी बहुत सरल और मिलनसार था। वह सदा किसी न किसी काम में लगी रहती। वह एक प्रसिद्ध राजवैद्य की कन्या थीं, इसलिये घर के काम काज में अवकाश पाने पर औषध आदि बनाती थीं। वह स्वयं भी अच्छी चिकित्सा करती थीं, दूर दूर से आये हुए, रोगियों को वे औषध के अतिरिक्त रहने के लिय स्थान तथा भोजनादि भी देती थीं, और बड़े प्रेम से उन की सेवा शुश्रूषा करती थी। मेरे पिता भी ऐसे

कामों के लिये उन्हें उत्साहित किया करते थे। और सब प्रकार का व्यय देते थे। यद्यपि पिताजी का स्वभाव बहुत तेज था, तो भी मेरी माता ने अपनी योग्यता और सुस्वभाव के कारण उन की प्रसन्नता सम्पादित की थी। मेरी माता भली भांति जानती थीं कि स्त्रियों के लिये पति ही देवता और गुरु हैं इसलिये उन्हों ने पिताजी से ही गुरुमंत्र लिया था। सन् १८७६—७७ में अकाल के कारण हम लोगों को कष्ट भी सहना पड़ा था। अपनी सन्तान पर वे यह कष्ट कभी प्रकट न होने देते थे। जिस धैर्य और शान्ति से उन लोगों ने वह समय बिताया, वह मुझे अब तक स्मरण है। सन्ध्या समय मेरी माता सब बच्चों को अपने चारों ओर बैठा कर पुराण तथा देवी देवताओं की कथाएँ सुनाया करती थीं। उनका विश्वास था कि इस प्रकार, बालकों के हृदय पर अच्छे विचारों का खूब प्रभाव पड़ता है। उन की कथा सम्बन्धी सब से विलक्षण बात यह है कि वे मुझे आज तक नहीं भूलीं। आज कल की पढ़ी और सुनी हुईं बातें तो बड़ी जल्दी भूल जाती हूं, परन्तु माता की सुनाई हुईं सभी कथाएँ मुझे अब तक अच्छी तरह स्मरण हैं।

[३]

मेरा विवाह ।

मेरा विवाह दिसम्बर १८७३, मार्गशीर्ष शुक्ल ११ शाके १७९५ को, गोधूलि मुहूर्त्त में हुआ था। विवाह सम्बन्धी वेदोक्त विधि समाप्त होने पर, रात को साढ़े दस वजे हम लोग घर पहुंचे। विवाह हो चुकने पर, घर आने से पूर्व आपने मेरे नैहर में भोजनादि कुछ भी न किया था। घर आ कर भी आप किसी से बोले चाले नहीं; चुपचाप अपने कमरे में जा कर भीतर से किवाड़ बन्द कर पड़ रहे। उस दिन आप को बहुत अधिक मानसिक वेदना हुई थी। प्रिय पत्नी का वियोग हुए अभी एक ही मास हुआ था, और वह दुःख अभी ताजा ही था। एक दम अनिच्छा होने पर भी, केवल अपने पिता जी के आज्ञानुसार यह विवाह किया था। उसमें भी दो कारण थे। आप न तो अपने बड़ों की बात टाला चाहते थे, और न उन के पारिवारिक सुख में किसी प्रकार का विघ्न डाला चाहते थे। पुनर्विवाह विषयक अपने नवीन विचारों को एक ओर रख कर, आपने संसार का उपहास और दोषारोप सहन करना स्वीकार कर लिया था। इसलिये आप को वह रात स्वभावतः असह्य दुःख देने वाली हुई। कुछ लोग आपके इस कार्य्य को ठीक नहीं समझते थे परन्तु मेरी समझ में तो यदि उन के समस्त

चरित्र में सच्चे स्वार्थत्याग और मन की महत्ता का कोई भाग है, तो उस में से यह अंश बहुत ही उदात्त और महत्त्वपूर्ण है और लोग तो जो चाहें, इस विषय में कह सकते हैं, परन्तु मैं इसकेलिये उन का अत्यन्त आदर करती हूं; और सच्ची भक्ति से, केवल चरित्र पर ध्यान रखने वाले लोग भी ऐसा ही करेंगे।

विवाह से दो सप्ताह पूर्व, बम्बई से आप के पास, पत्र पर पत्र आने लगे। उनमें अनेक बातो के साथ ही साथ, लिखा रहता था-'यही समय है। आप पिताजी से स्पष्ट कह दें कि आप किसी छोटी लड़की से विवाह न करके, पुनर्विवाह ही करेंगे।' पहले तो ये पत्र आप केही हाथ में आते थे, परन्तु जब श्वशुर जी को ये बातें मालूम हुई तो वे डाक के विषय में बहुत सावधान रहने लगे। जब सिपाही डाक लाता तो श्वशुर जी, उस में से बम्बई से आये हुए पत्र तथा तार अपने पास रख लेते और शेष ऊपर आप के पास भेज देते। श्वशुर जी के भय से, आप से भी किसी ने यह बात नहीं कही।

पहली स्त्री का देहान्त होने पर, श्वशुरजी ने कोल्हापुर से आते ही लड़की की खोज आरम्भ करदी। श्वशुर जी को भय था कि नवीन विचारों के कारण आप पुनर्विवाह ही करेंगे, और यदि कहीं इस बीच

में इन के मित्रों से भेट हो जायगी, तो और भी कठि-
नता होगी। इसीलिये श्वशुरजी ने लड़की खोजने में
शीघ्रता की।

उसी समय संयोगवश, मेरे पिताजी भी, वर ढूंढ़ने
के लिये पूना आये थे। श्वशुर जी तथा पिता जी में
पहिले से ही परिचय था। भेट होने पर पिताजी ने
कहा—'आप जानते ही हैं, हम लोगो में बिना विवाह
निश्चित हुए, लड़की को देखने के लिए भेजने की चाल
नही है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप किसी को
लड़की देखने के लिए हमारे यहाँ भेजदें। यदि विवाह
के लिए घर से लड़की लेकर चलें, और बिना विवाह
हुए ही उसे घर लौटा ले जांय, तो उस में हमारी हेठी
होगी।'

श्वशुर जी ने अपने आश्रित वेदमूर्त्ति श्रीयुत बालं-
भट जी को, मेरे पिता जी के साथ लड़की देखने के
लिए भेजा। बालंभट जी बड़े विद्वान्, कर्म्मनिष्ठ, शुद्धा-
चारी और सब के विश्वासपात्र थे। उन्हों ने आकर
मुझे देखा और कई प्रश्न किये। सब बातें भली भांति
समझ कर, रात को सोते समय उन्होंने पिता जी से
कहा—'मुझे लड़की पसन्द है। आप कल ही लड़की
ले कर चले चलें। मुहूर्त्त निश्चित होने पर, तार दे कर
घर के और लोगों को बुलवा लीजियेगा।'

तदनुसार हम लोग डाक के तांगे पर पूना पहुंचे। बीच में श्वशुर जी से और आप से विवाह सम्बन्धी बहुत सी बातें हुईं। आप ने कहा—'मैं अब विवाह नहीं करूंगा। मैं छोटा नहीं हूं, यह मेरा ३२ वां वर्ष है। इसलिए मेरे विचार पूर्वक रहने में कोई हानि नहीं है। दुर्गा मुझ से छोटी है, और २१ वर्ष की अवस्था में ही अनाथ हो गई है। परन्तु जब आप उस के लिए कोई चिंता नहीं करते, तब मेरे विवाह के लिए इतना आग्रह क्यों? यदि आप उसका व्रत पूर्वक रहना ही उत्तम समझते हों, तो यही बात मेरे लिए भी सही। यदि आप को भय हो कि मैं पुनर्विवाह कर लूंगा, तो मैं आप को वचन देता हूं कि मैं ऐसा नहीं करूंगा। आप इस विषय में चिन्ता न करें।' इसी प्रकार आपने और भी अनेक प्रार्थनाएँ कीं परन्तु श्वशुरजी अपनी बात पर दृढ़ रहे। अन्त में आप ने कहा—'चाहे आप मेरी बात न भी सुनें, परन्तु मुझे आप की आज्ञा माननी ही पड़ेगी। इसलिए यदि आप कृपा कर मुझे छः महीने के लिए और छोड़ दें, तो मैं विलायत हो आऊं।' यह बात भी श्वशुरजी ने स्वीकार नहीं की तब आप ने उन से कहला भेजा—'आप मेरी कोई बात नहीं चलने देते, तो कम से कम इतना अवश्य करें कि ल-

ड़की किसी दूसरे स्थान की हो, घर की कुलीन हो, और उस के सम्बन्धी भी भले आदमी हों। किसी साधारण घर की और रूपवान् लड़की नहीं चाहिए। यदि रूप रंग की अपेक्षा, कुलीनता पर अधिक ध्यान रक्खेंगे तो यह सम्बन्ध अधिक सुखदायक होगा।'

जहां हम लोग ठहरे थे, वहां आकर श्वशुर जी ने भी मुझे देखा, पसन्द किया, और एकादशी का मुहूर्त्त निश्चित किया। उन्होंने मेरे पिताजी से यह भी कहा कि आज सन्ध्या समय आप भी आकर वर को देख लें, और यदि पसन्द हो तो बात पक्की कर लें। तदनुसार पिताजी सन्ध्या समय वर देखने गये।

पिताजी सूरत शकल से योग्य और कुलीन मालूम होते थे। उन्हें देखते ही आप उठ खड़े हुए, और आदर पूर्वक बैठा कर बातें करने लगे। पिताजी ने थोड़े शब्दों में अपना परिचय दे कर, विवाह सम्बन्धी अपनी इच्छा प्रगट की। आप ने कहा—'आपने क्या देख कर मुझे अपनी कन्या देने का विचार किया है? आप पुराने खान्दानी जागीरदार है, और मैं सुधारक और पुनर्विवाह का पक्षपाती हूं। यद्यपि देखने में मेरा शरीर हृष्ट पुष्ट है परन्तु मेरी आंखें और कान खराब हैं। इस के अतिरिक्त मैं विलायत भी जाना चाहता हूं। वहां से

लौटने पर मैं प्रायश्चित्त भी नहीं करूंगा । इसलिये इन सब बातों पर आप विचार कर के तब अपना मत निश्चित करें।' उत्तर में पिता जी ने कहा—'भाऊ साहब मेरे पुराने परिचित हैं। उन से मैं ये सब बातें सुन चुका हूं। और आप को ही कन्या देने का विचार भी निश्चय कर चुका हूं।' इस पर आप ने चाहा कि अभी केवल बात पक्की हो जाय और विवाह एक वर्ष बाद हो, परन्तु पिताजी ने यह स्वीकार नही किया। तब आप ने विवश हो सब बातें अपने पिताजी पर ही छोड़ दी। पिताजी उठ कर चले आये । उन के चले जाने पर थोड़ी देर बाद आप ने अपने पिताजी को ये सब बातें सुना कर कहा—'मैंने उन से कह दिया है कि मै अभी साल छः महीने विवाह नही करूंगा। अब सब बाते आप पर छोड़ी गई है।' इस के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार से आप ने उन के विचार बदलने की चेष्टा की। श्वशुर जी ने कुछ उत्तर नही दिया; वे घण्टे डेढ घण्टे कुछ सोचते रहे। इस के बाद श्वशुर जी ने सब लोगो को वहां से हटा दिया। केवल दुर्गा वही बैठी रही। श्वशुर जी ने आप से कहा—'मैं ने इस विषय पर बहुत विचार किया। मेरी समझ मे इस समय तुम्हारी बात मानना ठीक नही है। यद्यपि मुझे

तुम पर पूरा विश्वास है; तथापि मुझे भय है कि साल छः महीने खुले छोड़ देने में मेरी वृद्धावस्था के सुख और शान्ति में विघ्न पड़ेगा। इधर १५ दिन से बम्बई से तुम्हारे मित्रों के जो पत्र आये हैं वे मेरे पास रखे हैं, उन्हें देखते हुए मैं तुम्हारी बात स्वीकार नहीं किया चाहता। अभी तुम्हारा नया जोश है, मित्र कान भर रहे हैं तिस पर वय की भी अनुकूलता है। इसलिए मुझे भय है कि चारों ओर की स्वतन्त्रता के कारण तुम्हारे नये विचार जोर पकड़ लेंगे। मेरी अवस्था अधिक हो गई है। गृहस्थी का सब भार तुम्हीं पर है, और तुम सब प्रकार योग्य भी हो। इसलिए तुम्हें मौहलत देने से मेरे पारिवारिक सुख में अन्तर पड़ेगा। मैंने दोनों पक्षों पर विचार किया है। तुम भी समझदार हो, जो उचित समझो, करो। मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि यदि विवाह नहीं हुआ तो मैं लड़की भी वापिस न भेज सकूंगा। उसमें उनकी (कन्या के पिता की) भी हेठी होगी और मेरा भी अपमान होगा। यदि तुम मेरी बात न मानोगे तो मैं तुम से कुछ सम्बन्ध न रखूंगा और कर-वीर चला जाऊंगा। आगे जो ईश्वरेच्छा होगी, वही होगा'। इतना कह कर श्वशुर जी, उठ कर सन्ध्या करने चले गये और आप ऊपर चले गये। ये सब बातें मुझे अपनी ननद दुर्गा से मालूम हुई थी।

निश्चित मुहूर्त्त में मेरा विवाह हो गया। विवाह के पहले या बाद कोई लौकिक विधि या उपचारादि नहीं हुए, केवल वैदिक विधि और हवनादि हुए। विवाह के दिन भी आप ने कचहरी से छुट्टी नही ली थी। जब तक आप कचहरी से लौट न आये, तब तक पिताजी को यही भय बना रहा कि बम्बई के किसी मित्र का, पत्र पा कर, मुहूर्त्त टालने के लिए, आप कहीं चले न जायँ। परन्तु तो भी उन्हें विश्वास था कि आप एक बार जो बात हमारे सामने स्वीकार कर लेंगे, उस से कदापि न हटेंगे। कचहरी का काम कर के, लायब्रेरी आदि में न जा कर आप सीधे घर चले आये। विवाह के पीछे पिताजी मुझे अकेली ससुराल में छोड़ कर, घर चले गये। इस अवसर पर यह कह देना आवश्यक है कि पिताजी मुझे ले कर घर से अकेले ही आये थे। विवाह का मुहूर्त्त बहुत निकट होने के कारण मेरे और सम्बन्धी वहा न आ सके। साथ ही वेदोक्त रीति के अतिरिक्त आप किसी प्रकार का लौकिक उपचार नहीं किया चाहते थे इसलिए मेरे पिताजी ने भी बाल बच्चों को बुला कर, व्यर्थ आप को दुःखित करना उचित नहीं समझा। पिताजी के चले जाने पर, उसी दिन सन्ध्या समय, कचहरी से आ कर आप मुझे ऊपर बुला ले गये।

ऊपर पहुंच कर मुझ से पूछा 'तुम्हारे पिताजी गये' ? मैं ने कहा 'हां'। फिर आपने पूछा 'तुम्हारा विवाह तो मेरे साथ हो गया। परन्तु तुम जानती हो, मैं कौन हूं? और मेरा नाम क्या है ?' मैं ने कहा 'हां'। आपने कहा 'बतलाओ मेरा नाम क्या है' ? आज्ञा पा कर मैं ने जो नाम सुना था, बतला दिया, जिसे सुन कर आप को एक प्रकार का समाधान हुआ। इस के उपरान्त आप ने मेरे नैहर के सम्बन्ध में कई प्रश्न किये और फिर मेरे लिखने पढ़ने के विषय में पूछा परन्तु मैं लिखना पढ़ना कुछ भी न जानती थी। उसी समय मुझे स्लेट पेंसिल मिली और मेरा विद्याभ्यास आरम्भ हुआ। बारहखड़ी आदि सीख कर १५ दिन में मैं मराठी की पहली पुस्तक पढ़ने लग गई। इस से पूर्व मैं लिखने पढ़ने से बिलकुल अनभिज्ञ थी। एक बार पिताजी पूना जाने लगे, तो मैं ने भाई बहनों से छिपा कर उन से कहा कि मेरे लिए साड़ी लेते आना। पिता जी ने पूना से जो पत्र भेजा था, उस में मुझे आशीर्वाद के साथ लिखा था—'तुम्हारी साड़ी मुझे याद है; लेता आऊंगा'। मेरे भाई ने मुझे यह पढ़ सुनाया। मुझे विश्वास था कि मेरी साड़ी वाली बात घर में किसी को मालूम नहीं है परन्तु भाई के मुंह से साड़ी की बात सुन कर मुझे बहुत आ-

श्चर्य हुआ। भैया ने मुझे यह समझाने की बहुत चेष्टा की कि पिता जी ने साड़ी का हाल पत्र में लिखा है, उसे पढ़ कर ही मैं ने जाना। परन्तु मेरी समझ में यह बात बिलकुल न आई कि किस प्रकार कोई गुप्त बात कागज पर लिखी और फिर पढ़ी जा सकती है। जब मैं तीसरी पुस्तक पढ़ने लगी, तब मुझे बाल्यावस्था की यह बात याद आई। उस समय मुझे बहुत आनन्द हुआ; क्योंकि मेरे मन पर से एक बोझ सा हट गया था—बड़ी भारी समस्या मेरे लिए हल हो गई थी।

दो तीन महीने बाद मेरे पढ़ाने के लिए, फीमेल ट्रेनिंग कालिज की एक मास्टरनी रखी गई। उस की अवस्था अधिक नहीं थी और शायद इसीलिए मुझे उस का कुछ डर भी न था। पढ़ने का समय, १ घण्टा स्लेट धोने और बातें करने में ही बीत जाता था। कभी कभी मैं एकाध पेज पढ़ भी लेती परन्तु मास्टरनी के चले जाने पर फिर दूसरे दिन, उस के आने तक, मै पुस्तक या स्लेट के दर्शन भी न करती। उसी अवसर पर तीन महीने की छुट्टी लेकर कई सज्जनों के साथ आप प्रयाग, काशी, कलकत्ता, मद्रास आदि की सैर करने चले गये थे, इसलिए और भी खुली छुट्टी थी। प्रवास से लौटने पर आपने देखा कि मेरी पढ़ाई ज्यों की त्यों है; उसमें

कुछ भी विशेषता नहीं हुई। आपने मास्टरनी से शिकायत की। उसने बिगड़ कर कहा—'मैं ने तो इस के साथ बहुत परिश्रम किया परन्तु यह देहातिन लड़की है; इसे पढ़ना लिखना नहीं आवेगा। आप स्वयं इसे पढ़ा कर देखलें; यदि यह पढ़ जायगी तो मैं अपना नाम बदल दूंगी।' यह कह कर वह चली गई और फिर पढ़ाने नहीं आई।

मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ, आंखों में आंसू भर आये। परन्तु उसी दिन से मेरा गंवारपन भी कम हो चला। उसी समय उसी कालिज की सगुणाबाई नाम की एक और मास्टरनी रखी गई। यह शान्त और सुशील थी। उसने १८७५ के अन्त तक ५ वीं कक्षा की पढ़ाई समाप्त करा दी।

मार्च १८७५ में, महाबलेश्वर जाते हुए, विष्णुशास्त्री पण्डित पूना आये। उसी समय उन्हों ने पुनर्विवाह किया था। दिन में कचहरी की झंझट होने के कारण आपने उन्हें रात के समय भोजन के लिये निमन्त्रित किया। कचहरी जाते समय आप दुर्गा से रात को भोजन का सब प्रबन्ध ठीक करने के लिये कह गये। १२ बजे जब श्वशुर जी सन्ध्या, ब्रह्मयज्ञ, जप, स्तोत्रपाठ आदि करके निश्चिन्त हुए, तो उन्हें यह बात मालूम

हुई। इस पर आप नाराज़ हुए। सन्ध्या और देवदर्शन करने जाने के समय, सास जी से कह गये—'तुम भोजन कर लेना और परोसने नहीं जाना। आज लड़की ही परोसेगी। मैं देर से आऊंगा; मेरा रास्ता मत देखना।' नियत समय पर अतिथि आये और भोजन करके चले गये। सब के बाद रात को ११ बजे श्वशुर जी बाहर से लौट कर आये। आते ही उन्हों ने बालंभट्ट से कहा—'कल हम करवीर जायँगे, गाड़ी ठीक कर रखना।' उस दिन श्वशुर जी बिना भोजन किये ही सो गये।

अपनी बहिन दुर्गा से ये सब बातें सुन कर आपको अधिक दुःख हुआ। प्रातःकाल उठते ही आप पिताजी के सामने जाकर चुपचाप एक खम्भे से लग कर खड़े हो गये। श्वशुरजी भी बिलकुल चुप रहे; उन्हों ने मानो आप को देखा ही नहीं। एक घण्टा इसी प्रकार बीत गया, परन्तु परस्पर कोई बात चीत नहीं हुई। अन्त में श्वशुरजी ने ही आपको बैठने की आज्ञा दी। आपने कहा—'यदि आप यहां से चले जाने का विचार छोड़ दें, तो मैं बैठूंगा। यदि आप लोग चले जायँगे, तो मेरा यहां कौन है? मैं भी आप लोगों के साथ ही चलूंगा। यदि मुझे मालूम होता कि कल की बात के लिए आप इतना क्रोध करेंगे, तो मैं कदापि ऐसा न करता।' इसी प्रकार आप बहुत

देर तक उन को शान्त करने की चेष्टा करते रहे, परन्तु उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इतने में बालंभट्टजी ने गाड़ी ठीक हो जाने की खबर दी। इस पर आपको बहुत ही दुःख हुआ। आप ने कहा—'अन्त में आप लोगों का जाना निश्चय हो गया। आप लोग मुझे यहां छोड़ कर चले जायँगे। जिस दिन मेरी माता मरी उसी दिन मैं अनाथ होगया।' दुःख के कारण आप वहां ठहर न सके और ऊपर चले गये। ऊपर से आप ने बालंभट्ट जी से कहला भेजा—'यदि आप लोग कोल्हापुर जाने का विचार त्याग न करेंगे तो मैं भी यहां इस्तैफा दे दूंगा'। इस पर श्वशुर जी ने अपना विचार परित्याग कर दिया। फिर कभी ऐसा संयोग भी नहीं आया।

इसी अवसर पर हम लोगों ने एक मकान खरीद लिया जिस में हम लोग रहते थे। श्वशुरजी इस कार्य से बहुत प्रसन्न थे। मकान खरीदने की प्रसन्नता का कारण यह था कि यद्यपि श्वशुर जी २५०) मासिक पाते थे, तो भी खर्चीला स्वभाव होने के कारण, उन पर कई हजार का कर्ज हो गया था इसलिए वह आज तक कोई स्थावर सम्पत्ति न खरीद सके थे। श्वशुर जी का ऋण ऐश आराम के कारण नहीं हुआ था। तीन सगे तथा दो रिश्ते के भाइयों के परिवारों का कुल व्यय आप

पर ही था। उन के बाल बच्चों के पढ़ाने तथा विवाह आदि में ही यह व्यय हुआ था। परन्तु आप ने उन का सब कर्ज चुका दिया और अन्त समय तक भली भाँति पुत्र-धर्म्म पालन किया। श्वशुर जी की पेन्शन से उन का कार्य्य नहीं चलता था इसलिए आप उन्हें पूना से १५०) मासिक भेजते थे।

मकान के बैनामा का मसौदा जब तैयार हुआ तो श्वशुर जी ने आप के पास देखने के लिए भेजा। आप ने उस पर पेन्सिल से लिख दिया 'मसौदा ठीक है परन्तु मैं चाहता हूं कि खरीदने में मेरे नाम के स्थान पर आप का नाम हो'। श्वशुर जी ने कहा 'जगदम्बा की कृपा से तुम्ही ने हमारे कुल में यह स्थावर सम्पत्ति पहले पहल प्राप्त की है इसलिए खरीद में भी तुम्हारा ही नाम होना चाहिए'। इस पर आप ने कहा 'मैं ने इस पर बहुत विचार किया है। आप के नाम से ही खरीद होने में अधिक शोभा है; इसलिए आप इनकार न करें'। तदनुसार दूसरे दिन श्वशुर जी ने अपने नाम से ही वह मकान खरीद लिया।

इसी वर्ष जून सन् १८७५ में श्वशुर जी बाल बच्चों को ले कर कोल्हापुर चले गये। वहां कुछ दिन रहने पर उन की पीठ में एक फोड़ा हुआ। वह मधुमेह से पीड़ित

थे इसलिए दो वर्षों में, इसी प्रकार कई बड़े बड़े फोड़े निकल चुके थे, जिन से बहुत अधिक कष्ट होता था। इस बार भी डा० सिंक्लेयर और वहां के सिविल सर्जन का इलाज होने लगा परन्तु रोग बढ़ता देख कर उन की सेवा शुश्रूषा के लिए आप भी एक मास की छुट्टी लेकर कोल्हापुर चले आये। थोड़े दिनों बाद पीठ के दूसरे भाग में एक और फोड़ा निकल आया और डाक्टरों ने भी निराशा दिखलाई इसलिए आप को एक मास की छुट्टी और लेनी पड़ी परन्तु रोग दिन पर दिन बढ़ता ही गया। छुट्टी का दूसरा महीना भी समाप्त हो गया। अब जब तक आप स्वयं पूना न जांय, तब तक आगे छुट्टी नहीं मिल सकती थी। श्वशुर जी को जब यह बात मालूम हुई तो वे बच्चों के समान रोने लगे। उन्हों ने कई बार कहा भी—'मुझे अकेले छोड़ कर न जाना'। उन दिनों रेल न होने के कारण डाक का टांगा ३६ घण्टे में पूना पहुंचता था इसलिए जब छुट्टी में केवल तीन दिन रह गये तो डाक्टर सिंक्लेयर से सब वृत्तान्त कह कर आप ने उन्हें समझाने के लिए भेजा। डाक्टर साहब के समझाने पर श्वशुर जी ने भी आपको पूना जा कर छुट्टी ले आने की आज्ञा दी। चलते समय श्वशुर जी ने आंखों में आंसू भर, अपने हाथ में आप का

हाथ ले कर कहा—'यद्यपि डाक्टर साहब ने मुझे आशा दिलाई है, तो भी मुझे अपने जीवन का भरोसा नहीं है इसलिए जल्दी लौट आना नहीं तो भेंट न होगी। अब गृहस्थी का सारा भार तुम्हीं पर है'। 'आप ने कहा 'आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। मैं कभी पुत्रधर्म न छोडूंगा'। श्वशुर जी ने पीठ पर हाथ फेर कर आप को पूना जाने की आज्ञा दी। चलते समय आप ने अपने मामा तथा बहिन को एक ओर बुला कर कहा—'पिताजी का कष्ट तो बहुत बढ़ ही गया है परन्तु मुझे माता जी की चिन्ता है। पिछले दरवाजे में ताला बन्द कर देना और उन पर विशेष ध्यान रखना'।

पूना में छुट्टी मंजूर होने में छः दिन लग गये। पिताजी का सब हाल आप को रोज तार द्वारा मिलता रहा। छुट्टी मंजूर होने पर, जिस दिन आप कोल्हापुर आने के लिए टांगे पर सवार होने लगे, उसी समय (३ फरवरी सन् १८७७) आप को पिता जी के स्वर्गवासी होने का तार मिला। बहुत अधिक दुःख होने के कारण आप ने कोल्हापुर जाने का विचार छोड़ दिया। कृष्णशास्त्री चिपलूणकर आदि मित्रों के पूछने पर, आप ने कहा—'वहां सब लोग हैं हीं, वही सब प्रबन्ध कर लेंगे। वहां लोगों का दुःख और कष्ट मुझ से देखा या सहा न

जायगा इसलिए वहां न जाना ही अच्छा है। अब मैं वहां से सब लोगों को यहीं बुलवा लूंगा'। १५—२० दिन बाद आप ने वहां का श्वशुर जी का कर्ज सूद सहित साफ करने के लिए दो हज़ार की एक हुण्डी भेज कर, सब लोगों को पूना चले आने के लिए पत्र लिख दिया। बालंभट्ट जी तथा मामा जी, यह सब प्रबन्ध कर के सब लोगों को ले कर शीघ्र ही पूना चले आये। पूना में आप नित्य सन्ध्या समय भोजन से पूर्व सास जी के पास एक घण्टा बैठते, और घर तथा बाल-बच्चों का हाल चाल पूछते और इस प्रकार उन के दुःखी मन को ढाढ़स देने की चेष्टा करते। मेरे दो छोटे देवर थे, जो अवस्था में प्रायः मेरे समान ही थे। परस्पर सगे भाई बहनों का सा प्रेम होने के कारण, हम लोग सदा साथ रहते। उन्हें अंगरेज़ी पढ़ते देख, मैंने भी आप से अंगरेज़ी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। आप को आश्चर्य भी हुआ और आनन्द भी। आपने कहा—"हमारी भी यही इच्छा है। परन्तु तुम्हारा मराठी का अभ्यास समाप्त होने पर अंगरेजी आरम्भ होगी।'

यद्यपि श्वशुर जी ने घर का हिसाब किताब ठीक रखने के लिए, सासजी, तथा मेरी ननद को पढ़ाया था, तो भी न जाने क्यों उन्हें मेरा लिखना पढ़ना अच्छा

न लगता था। उस समय हमारे घर में पास तथा दूर के रिश्ते की आठ नौ स्त्रियां थीं। उनमें मेरे बराबर और मेल की एक भी न थी, इसलिए उन लोगों ने अपना अलग गुट्ट बना लिया था। उस समय दक्षिणा-प्राइज-कमेटी की पुस्तकें आदि मेरे पास आती थीं। गद्य तो नहीं, परन्तु पद्य पढ़ने में मुझे कठिनता होती थी; क्योंकि पद्य में पद, आर्य्या, श्लोक आदि पढ़ने के लिए ऊंचे स्वर की आवश्यकता होती थी और यदि घर की स्त्रियां, मुझे जोर से पढ़ते देखती या सुनती, तो मुझे चिढ़ाती और लज्जित करती। परन्तु मैं कभी किसी को कुछ उत्तर न देती थी। कभी कभी मुझे समझाती,—'इसी पढ़ने लिखने के कारण, तुम बड़ी बूढ़ियों से इतनी बातें सुनती हो, तो भी उसे नहीं छोड़तीं। तुम्हें अपना अधिकांश समय स्त्रियों में ही बिताना चाहिए। यदि वह तुम्हें पढ़ने के लिए कहें भी तो उस पर ध्यान न दो, छुट्टी हुई। आप ही कहना छोड़ देंगे। परन्तु मैं कभी उन्हें कोई उत्तर न देती; मुझे जो करना होता मैं चुपचाप करती।

कुछ महीनों बाद मेरी मराठी शिक्षा समाप्त होने पर अंगरेजी शिक्षा आरम्भ हुई। परन्तु अब पहले की भांति केवल रात के एक घण्टे से काम नहीं चलता था;

दिन में पाठ याद करने में दो एक घण्टे लग जाते थे। इस पर, बुरा लगने के कारण, एक दिन एक स्त्री ने मुझ से कह ही दिया—'ऊपर अपने कमरे में, तुम जो चाहो, किया करो। यदि कोई बात हमारी मर्यादा के विरुद्ध हुई तो अच्छा न होगा।' उन के इस कहने का एक कारण भी था। एक दिन मैं एक अङ्गरेजी अखबार का टुकड़ा हाथ में लेकर खड़ी देख रही थी। घर की सब स्त्रियों ने मुझे इसी दशा में देख लिया। मेरी ननद दुर्गा ने बिगड़ कर कहा—'तुम्हारा आफिस ऊपर है। वहां चाहे तुम पढ़ो चाहे नाचो। यहां इस की जरूरत नहीं। हमारी पहली भाभी ने भी लिखना पढ़ना सीखा था; परन्तु हम लोगों के सामने कभी उसने किताब छुई भी नहीं। भैया ने उसे भी अंगरेजी पढ़ाने के लिए, कितना जोर दिया, परन्तु उसने कभी इस ओर ध्यान भी न दिया। यदि भैया उस से दस बातें कहते तो वह एक करती। उस में ये गुण नहीं थे'।

बात बात पर मुझे ऐसी ही झिड़कियां सुननी पड़तीं। मैं घण्टों चुपचाप रोती, परन्तु आपसे कभी कोई बात न कहती। ससुराल आते समय मुझे पिताजी ने उपदेश दिया था—'देखो, अब तुम ससुराल जा रही हो। वहां, बड़े कुटुम्ब में दस तरह के आदमी होंगे।

निकल गई, तो आप खोद खोद कर और बातें भी पूछ लेंगे; और तब मेरा नियम भंग होजायगा। साथ ही मैं यह भी समझती थी कि इस समय जितनी ये सब बातें होंगीं, उतनी ही कमी हमारे सुख में भी हो जायगी। तो भी आप घरकी स्त्रियों के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित थे, इसलिये स्वयं सब बातें समझ कर, उसी ढङ्ग से मुझे ढाढ़स दिया करते। उन प्रेमपूर्ण शान्त शब्दों को सुनते ही मैं दिन भर का सारा कष्ट भूल जाती और अपने समान किसी को सुखी न समझती। सवेरे नीचे उतरते समय आप समझा देते—'थोड़ी सहनशीलता सीखो; किसी बात का उत्तर मत दो। मैं तो तुमसे कभी कुछ नहीं कहता। यदि दूसरा कोई कुछ कहे, तो उस का बुरा न मानो।' इस प्रकार धैर्य मिलने के कारण, मेरा सारा दिन सुखपूर्वक बीतता,

पढ़ने के कारण, मुझे घरकी बड़ी बूढ़ियों से बहुतेरी बातें सुननी पड़ती थीं, परन्तु तो भी मैं ने पढ़ना नहीं छोड़ा। आप सदा मुझे धैर्य देते और बात चीत में मेरा ही पक्ष लेते थे। मेरी सच्चता का आधार, आप का शांत, गम्भीर और प्रेमपूर्ण उपदेश ही था। नहीं तो मेरे समान अल्पवयस्क और अल्पबुद्धि बालिका का कहीं ठिकाना न लगता। ऐसी गण जितनी जल्दी और

सरलता से एक दूसरे के हृदय के भाव समझ लेते हैं, उतनी जल्दी और लोग नहीं समझते। इसलिए आप भी कुछ चिन्तित और दुःखित रहते। परन्तु पुण्याई कुछ सबल थी, इसलिए अधिक दिनों तक हम लोगों को यह कष्ट न उठाना पड़ा, और शीघ्र ही आप की बदली नासिक हो गई। आप, मैं और आबा भाऊ (देवर) तीन ही आदमी नासिक गये। नासिक में मेरे पढ़ने का भी अच्छा सुभीता हो गया और हम लोगो का समय भी अधिक आनन्द से बीतने लगा। इस अवसर पर पूना तथा अपनी बदली का कुछ हाल लिखना आवश्यक मालूम होता है।

सन् १८७४-७५ में मल्हारराव गायकवाड़ का विष प्रयोग वाला मुकद्दमा चल रहा था। पूना वालों ने एक तार इस आशय का बड़ौदा भेजा कि यदि राज्य मुकद्दमा चलाना मंजूर न करे तो महाराज ही यह मुकद्दमा चलावें। पूना वाले इस के लिए एक लाख रुपए तक देने के लिए तैयार हैं। उस समय सर रिचर्ड टेम्पल गवर्नर थे। सरकार पूना के कुछ भद्र लोगो को सन्देहदृष्टि से देखती थी। उन्ही दिनों सरकार ने बम्बई प्रान्त में नया नियम चलाया कि भविष्य मे एक सब-जज ३ या ५ वर्ष से अधिक एक स्थान पर

न रहे; और इसी अनुसार आपकी बदली होगई। पूना छोड़ने से कोई चार महीने पहले, एक आदमी कहीं से घूमता फिरता वहाँ आ ठहरा। ऊपर से तो वह पूना के सभी छोटे बड़ों से मेल बढ़ाने की चिन्ता में रहता, परन्तु उस के मन की बात कोई भी नहीं जानता था। अपने ठहरने के स्थान पर उसने पान, बीड़ी, ताश, सितार आदि आमोद की बहुतसी चीजें रखी थी; इसलिए उसके यहां लोगों का जमाव भी खूब होता था। शहर के सभी छोटे बड़ों का इस प्रकार एक अजनबी से से मेल बढ़ाना ठीक नहीं था; परन्तु इस बात का कोई विचार न करता था। सार्वजनिक सभा के मन्त्री, सीताराम हरि चिपलूणकर उनसे अधिक मेल रखते थे। वह सभा की त्रैमासिक रिपोर्ट लिखने के लिये रोज हमारे यहाँ आया करते थे। एक दिन आपने उनसे, उस आदमी का नाम व पता पूछा। उन्होंने कहा—'नाम व पता तो मैं नहीं जानता, क्योंकि वह किसी को कुछ बतलाता ही नहीं। हां, बात चीत से विद्वान् और भला आदमी मालूम होता है।' इस पर आपने उन से कहा—'तुम सब से पहले इस बात का पता लगाओ कि उसकी डाक कहाँ से आती है।' तीसरे दिन उन्हों ने पता लगाकर कहा—'वह टेढ़े सीधे रास्तों से स्वयं डाकखाने जाता

है। वहीं वह अपनी चिट्ठिया छोड़ता है और स्वयं ही अपनी डाक लाता है। कल उस का एक फटा हुआ लिफाफा मुझे मिला। उस पर शिमले की मोहर है। साथ ही पोस्ट आफिस में एक मित्र से मुझे मालूम हुआ कि, कलकत्ता व शिमला के गवर्नमेंएट सेक्रेटरियट से उसका पत्र-व्यवहार है। इसलिए आप का सन्देह बहुत से अंशों में ठीक मालूम होता है।' उसी दिन से लोगों का उस के यहां जाना आना कम हो गया। वह भी शायद यह बात समझ गया और तीसरे दिन पूना ही से चलता बना।

---

[४]

पूना में दयानन्द सरस्वती का आगमन।

लाहौर से स्वामी दयानन्द पूना आये। यहां भिड़े के दीवानखाने में, रोज उन के व्याख्यान होते थे। सन्ध्या समय आपके दो ढाई घण्टे वहीं व्याख्यान सुनने तथा प्रबन्धादि में लग जाते थे। उनके जाने के समय; लोगों ने उन का जुलूस निकालने का विचार किया। इस पर विरोधियों में बड़ी खलबली मची। जो लोग कभी धर्म का नाम भी न लेते थे, वे भी इस समय विरोधियों में मिल गये और स्वामीजी के अपमान के उपाय

सोचने लगे। इधर हमारे यहां सब लोग एकत्र हो कर स्वामी जी के जुलूस का प्रबन्ध करने लगे। जुलूस निकलने के दिन, सवेरे छः बजे ही, विरोधियों ने गर्दभानन्दाचार्य की सवारी निकाली। यह सवारी सन्ध्या के छः बजे तक शहर में चारों ओर घूमती रही। सुबह ७ ही बजे यह खबर हमारे यहां भी पहुंची; सब लोग उसे सुन कर खूब हँसे। उसी समय पुलिस के कुछ सिपाही बुलाने के लिये पुलिस सुपरिण्टेण्डण्ट को पत्र लिखा गया।

उस दिन सन्ध्या समय नियमानुसार फिर सब लोग व्याख्यान के लिए नियत स्थान पर एकत्रित हुए। स्वामी जी अच्छे वक्ता थे, उन का भाषण गम्भीर था। उन की बातें मार्मिक और अलंकारिक होती थी इसलिये श्रोता तल्लीन हो जाते थे। पहिले स्वामीजी ने १५—२० मिनट तक उपस्थित लोगों को नित्य आकर व्याख्यान सुनने के लिये धन्यवाद दिया और कृतज्ञता स्वीकार की। 'पान सुपारी' के बाद स्वामी जी को मालाएँ पहनाई गईं। हाथी और पालकी आदि का प्रबन्ध पहले ही हो चुका था। पालकी में वेद रक्खे गये और स्वामीजी हाथी पर बैठाये गये। ज्यों हीं जुलूस चलने लगा, त्योंहीं विरुद्ध दल के कुछ आदमी आ कर अण्ड बण्ड बकने लगे। जगह २ पर उस पक्ष के औ

लोग भी खड़े थे, जो उन लोगो को दंगा करने के लिए उत्तेजित करते थे। उस दिन वर्षा होने के कारण, रास्ते में कीचड़ हो गई थी। जब जुलूस चुपचाप चलने लगा तो लोगों ने, जो कुछ उन के हाथ में आया, उस पर फेंकना आरम्भ किया। जिन लोगों के हाथ खाली थे; वे कीचड़ ही फेंकने लगे। परन्तु जुलूस के लोगों ने पीछे फिर कर देखा भी नही। पुलिस के सिपाहियों से कह दिया गया था कि जब तक हम लोग न कहें, बीच में न पड़ना। जब जुलूस दारू वाले के पुल तक पहुँचा, तो लोगों ने ईंट पत्थर भी फेंके, परन्तु वे जुलूस के लोगो के नहीं, राह चलतों के लगे। इस पर पुलिस ने दस्तन्दाजी की और वे लोग भाग गये। आप ने घर आ कर कपड़े बदले। घर पर जब लोगों ने आपसे पूछा कि—साथ मे सिपाहियों के रहते भी आप पर कीचड़ कैसे पड़ी?' तो आप ने हँस कर कहा—'क्या खूब! जब हम भी सबो में शामिल थे, तो हम पर कीचड़ क्यों न पड़ती? पक्षाभिमान का काम ऐसा ही होता है। उस में इस बात की परवाह नही की जाती कि विरुद्ध पक्ष के लोग उच्च है, या नीच। ऐसे अवसर पर मानापमान का विचार हम लोगो के मन में क्यों आने लगा? ऐसे काम इसी तरह होते हैं।'

[५]

नासिक की बदली ।

हम लोग घर के तीन आदमी, ब्राह्मण, गाड़ी और गाड़ीवान नासिक पहुंचे। रसोई के लिए ब्राह्मणी न मिलने के कारण, महीने डेढ़ महीने मुझ को ही भोजन बनाना पड़ा। अभ्यास न होने के कारण, भोजन अच्छा नहीं बनता था, परन्तु आप इस पर कभी अप्रसन्न नहीं हुए। यदि इस कारण मैं कभी भोजन कम करती, तो आप हँस कर कहते—'विद्यार्थियों को भोजन के स्वाद पर नहीं जाना चाहिए। जो कुछ सामने आवे चुपचाप खा लेना चाहिए।' मुझे पाक शास्त्र की एक पुस्तक मिली, आज्ञानुसार मैं रोज उसमें लिखा हुआ एक नया पदार्थ उसी क्रिया के अनुसार बनाती। कुछ दिन बाद रसोईदारिन भी मिल गई और मुझे पढ़ने के लिए अधिक समय मिलने लगा। उन दिनों सवेरे घण्टे डेढ़ घण्टे पढ़ाई होती। सन्ध्या समय हवा खा कर लौटने पर एक घण्टा मराठी समाचार पत्र पढ़ती; और भोजनोपरान्त, रात को दस बजे तक आप दक्षिण-प्राइज़-कमेटी से आई हुई मराठी पुस्तकें मुझ से सुनते। प्रातः-काल चार साढ़े चार बजे सो कर उठने पर, आप आर्य्या, श्लोक, पद्य आदि सुनते। कभी २ आप ही संस्कृत श्लोक

पढ़ कर उन का अर्थ मुझे समझाते और वह श्लोकादि मुझे याद कराते। बीच २ में आप श्लोक और उन का अर्थ भी मुझ से पूछते। भोजनोपरान्त जब आप कचहरी चले जाते, तो मैं कचहरी में भेजने के लिए, जलपान तैयार करती। रोज तीन चार चीजें नई करनी पड़ती थीं, इसलिए उस में भी दो घण्टे लगते। पौने दो बजे ब्राह्मण के हाथ जलपान कचहरी भेज कर मैं पढ़ने बैठती और साढ़े चार बजे तक पाठ याद करती। यदि कभी मुझे पाठ याद न रहता तो आप बिगड़ते नहीं, बल्कि चुप और उदास हो जाते और नया पाठ न देते। परन्तु यह दशा अधिक देर तक न रहती। छोटी छोटी बातों के लिए आप कभी नाराज़ न होते और किसी बड़ी बात पर जब अप्रसन्न होते तो वह अप्रसन्नता अधिक समय तक रहती। इसलिए मुझे ऐसा अवसर न आने देने के लिए, अधिक चिन्ता रहती।

अंगरेजी की दूसरी पुस्तक समाप्त होने पर ईसपनीति और न्यू टेस्टमेण्ट पढ़ना आरम्भ किया। जब गृहस्थी और पढ़ाई की अवस्था ठीक हो गई, तब मुझे घर का खर्च लिखने की आज्ञा हुई। इस से पूर्व रुपए मेरे पास ही रहते थे, और खर्च ब्राह्मण करता और वही लिखता। अब मैं ही खर्च करने और लिखने लगी।

रोकड़ मिलाने में रोज मुझे घंण्टों लग जाते । इस से मेरे अभ्यासक्रम में भेद पड़ने लगा। तब से आप स्वयं रात को रोकड़ मिला कर, यदि भूल होती तो मुझे समझा कर, सोते। एक दिन पहली तारीख को आपने १००) मुझे दे कर कहा—'इतने में महीने भर भोजन मात्र का कुल खर्च चलाना।' हमारे यहा आठ आदमियों की रसोई होती थी। अनुभव न होने के कारण मैंने समझा कि महीना समाप्त होने पर इस में से भी कुछ बच रहेगा। आपने पहले ही कह दिया था कि 'आज कल जैसा भोजन होता है, न तो उस में किसी प्रकार की कमी हो, और न किसी का कुछ उधार रहे।' आप के कथनानुसार में खर्च करने लगी। २५ तारीख तक ही सब रुपये समाप्त हो गये और मुझे चिन्ता ने आ घेरा। आपने दो एक बार चिन्तित रहने का कारण भी पूछा, मैं ने योंही टाल दिया। मैं ने कई बार विचार किया कि मैं अधिक रुपए खर्च करने की आज्ञा ले लूं, परन्तु मेरा मानी स्वभाव ऐसा न करने देता था। घबरा कर मैं रोने लगी। ज्यों ही मेरे मुंह से निकला—'खर्च के रुपए समाप्त होगये।' आपने झट कहा—'और जितनों की आवश्यकता हो ले लो। इस में रोने की क्या बात है। हमारा उद्देश्य केवल यही है कि तुम गृहस्थी का प्रबन्ध

करना सीखो। जितने आवश्यक हों, और रुपये ले लो, और सब खर्च ठीक ठीक लिखती चलो।"

उस समय आपको ८००) मासिक मिलते थे, और सब रुपये मेरे ही पास रहते थे। आपने तो ताली कुंजी कभी छुई भी नहीं। तो भी निश्चित रक़म के अतिरिक्त बिना आज्ञा, मैं पांच रुपए से अधिक कभी खर्च न करती। यद्यपि अधिक खर्च के लिए पूछने पर कभी आप नाहीं नहीं करते थे; तो भी मैं नियमानुसार आज्ञा ले ही लेती।

इन से पहले के सब-जज रा० ब० विष्णु मोरेश्वर भिड़े, अपना नासिक वाला बाग बेचना चाहते थे, वह हमने खरीद लिया। इसलिए हम लोगों के विनोद में एक और साधन बढ़ गया। सवेरे मैं अकेली बाग में जाती और सन्ध्या समय आप भी भाऊ साहब सहित साथ होते। सवेरे मेरे साथ जो सिपाही रहता, वह मुझे कई प्रकार के भजन तथा पुराण की कथाएँ सुनाया करता और मैं 'हूं हूं' करती जाती। सवेरे बाग जाने में मेरा व्यायाम भी हो जाता और ताजी तरकारियां और फूल भी मिलते। अपने खर्च के लिए तरकारी और फूल आदि ले कर बाग़ की जो उपज बचती वह बेच दी जाती और बाग़ के खाते में जमा कर ली जाती। आप के आज्ञानुसार

तीसरे चौथे दिन मैं कुछ फल फूल आदि मित्रों के यहां भी भेज देती थी।

उसी वर्ष कई मित्रों की सहायता से आप ने नासिक में प्रार्थनासमाज स्थापित किया। उस समय वहां रा० ब० गोपालराव हरि देशमुख डिस्ट्रिक्ट जज थे। यद्यपि उन के घर में सब लोग पुराने विचार के थे तो भी पढ़े लिखे थे। श्रीयुत देशमुख को पुराण सुनने तथा कहने का बहुत शौक था। वह अधिकांश व्रतादि करते और बड़े नियमधर्म से रहते। धीरे धीरे मेरा भी उन के यहाँ आना जाना आरम्भ हुआ। श्रीयुत देशमुख तथा आप दोनों ही स्त्रीशिक्षा के पक्षपाती थे। इसलिए आप लोग शहर की स्त्रियों को एक स्थान पर एकत्र कर के उन्हें सीता, सावित्री आदि प्राचीन साध्वी स्त्रियों के जीवन-चरित्र सुनाना और उन का ध्यान शिक्षा की ओर आकर्षित करना चाहते थे। साथ ही लड़कियों को पाठशाला में बुलाना और उत्साहप्रदान के लिए छोटे छोटे इनाम दिया चाहते थे और इन कामों के लिए हम लोगों से अनुरोध होता था।

इसी अवसर पर हम लोगों को एक अच्छा अवसर मिला। थाना के सेशन्स जज मि० कागलेन साहब नासिक आये। उन की स्थिति यहां ८-१० दिन के लिए

थी। उन के साथ में उन की स्त्री तथा साली भी थी। वे हिन्दू स्त्रियों से मेल बढ़ाना चाहती थीं इसलिए दूसरे दिन स्वयं ही वे दोनों हमारे यहा मिलने आईं इसलिए तीसरे दिन मैं भी उन के यहां बदले की भेंट के लिए गई। देशमुख की दोनों लड़कियां, मैं, मिसेज़ काग-लेन् और उनकी बहन सभी समान अवस्था की थीं इस-लिए हन लोगों में परस्पर अच्छा परिचय और प्रेम हो गया। सवेरे व सन्ध्या को हम सब मिल कर घूमने जातीं। उसी अवसर पर बम्बई से सखूताई ठोसर, जिनका नैहर नाशिक में था और जो रिश्ते में मेरी ननद थीं, भी आ गईं और हाई स्कूल के हेडमास्टर की स्त्री सौ० लक्ष्मी-बाई जिन्हों ने मुझे सीना और जाली का काम सि-खाया था हम से मिल गईं। हम सबो में इतना अधिक प्रेम बढ़ गया था कि बिना नित्य एक दूसरे को देखे किसी को चैन नहीं था।

उसी अवसर पर निरीक्षण के लिए डेप्युटी एजूकेश-नल इन्सपेक्टर भी वहां आये हुए थे। श्रीयुत देशमुख की इच्छा थी कि लड़कियों के स्कूल का इनाम मिसेज़ कागलेन् के हाथ से बंटवाया जाय। इस पर आप भी सहमत हो गये और उस के लिए दिन भी निश्चित हो गया। स्त्रियों का जमाव अधिक करने के उपाय

सोचे जाने लगे। केवल निमन्त्रण-पत्र पा कर ही पुराने जागीरदारों के घरों की स्त्रियां न आतीं इसलिए निश्चित हुआ कि उन्हें निमन्त्रण देने के लिए उन के घर स्त्रियां ही भेजी जांय। डिपुटी साहब ने कहा—'यह काम आप ही दोनों सज्जनों के घरों की स्त्रियां भली भांति कर सकेंगी'। एक सूची तैयार हुई और निश्चय हुआ कि देशमुख की दोनों लड़कियां और मैं तीनों मिल कर इन घरों में निमन्त्रण दे आवें। हम तीनों जाकर सबों को निमन्त्रण दे आईं। इनाम बंटने के दिन ५०—६० स्त्रियां एकत्र हुई थीं। उस समय इसी संख्या को हम लोगों ने बहुत समझा था क्योंकि नासिक में स्त्रियों और पुरुषों का एक साथ एक स्थान पर एकत्रित होने का यह पहला ही अवसर था। हां, शहर के सभी पुरुष निमन्त्रित नहीं किये गये थे। केवल स्त्रीशिक्षा के पक्ष-पाती ही दस बारह सज्जन बुलाये गये थे।

लड़कियों की ईश्वर-वन्दना और स्वागत के पदों के बाद डिपुटी साहब ने गत वर्ष की रिपोर्ट सुनाई और तब मिसेज कागलेन् ने लड़कियों को अपने हाथों से इनाम बांटे। मिसेज़ कागलेन् तथा अन्य स्त्रियों को धन्यवाद देने के लिए आप ने एक लेख लिखा था जोकि श्रीमती देशमुख पढ़ कर सुनाने को थीं। ठीक समय पर

उन्हों ने यह भाषण करने से इन्कार किया इसलिए आप ने वह बोझ मुझ पर डाल दिया। मैं ने वह लेख पढ़ सुनाया। इस के बाद डिपुटी साहब ने मेरे सामने मालाएँ ला रखीं। मैं ने मिसेज़ कागलेन, उन की माता तथा बहिन को एक २ माला पहना दी। डिपुटी साहब ने मुझ से साहब को भी माला पहनाने के लिए कहा। इस पर मुझे क्रोध आया और मैं ने इन्कार कर दिया। यह देख देशमुख हँसते हुए उठे और उन्हों ने कागलेन साहब को माला पहनाई और इत्र आदि दिया। इधर देशमुख की दोनो लड़कियों ने शेष स्त्रियों को पान तथा मालाएँ दीं और सब कृत्य समाप्त होने पर हम लोग अपने घर आये।

रात को सोते समय सहज विनोद से आप ने कहा 'हो गई तुम लोगों की सभा? सब काम तो पुरुषों ने किया; तब उस में स्त्रियों का अहसान काहे का? तुम ने केवल तीनों को मालाएँ ही पहनाईं। बेचारे कागलेन साहब ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?' मैं ने कहा 'यदि मैं हिन्दू न होती तो मुझे भी उस में कोई आपत्ति न होती। हिन्दू हो कर भी डिपुटी साहब ने मुझे माला पहनाने के लिए कहा इस पर मुझे आश्चर्य हुआ और क्रोध भी आया'। आपने कहा—'डिपुटी साहब पर तुम्हारी

अप्रसन्नता व्यर्थ है। उन्हों ने किसी दूसरे विचार से तुम्हें वह बात नहीं कही थी।'

---

[६]

धूले, सन् ८७९–८०

सन् १८७९ ई० मई धूले से, गर्मी की छुट्टी में हम लोग पूना आये। हम लोगों के आने से पूना के लोग बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि पूना के नववयस्क लोगों के सोये हुए विचारों को आप ही कार्य्य रूप में परिणत करते थे, और वह होता भी उन लोगों के इच्छानुरूप ही था।

वर्ष की इन्हीं दो छुट्टी के महीनों में आप को सब से अधिक कार्य्य करने पड़ते थे। कभी २ तो आप को रात में दो घण्टे भी सोने का अवकाश न मिलता था। आप भी इन कामों को बड़े चाव से करते थे; इसलिए इन में थकावट या बोझ न मालूम होता था। उसी समय पूना में वसन्त-व्याख्यानमाला वक्तृत्वोत्तेजक सभा का आरम्भ हुआ था; और रोज कोई न कोई सभा, या नई कमेटी स्थापित होती थी। इन के अरिरिक्त नगर के वृद्ध और युवा सबों का जमाव हमारे ही यहाँ होता था। दिन में १२ – १ बजे और

रात में ११ बजे से पूर्व कभी भोजन होता ही न था। साधारणतः हम लोग रात को १२ बजे सोते थे। कभी कभी नवीन विचारों की चिन्ता करते २ ही सवेरा हो जाता परन्तु यह जागरण अपनी इच्छा और प्रसन्नता से होता था, इसलिए इस से थकावट या कष्ट नहीं होता था।

इसी साल वासुदेव बलवन्त फड़के वाला बलवा हुआ था। साथ ही इधर उधर और भी उपद्रव हो रहे थे। इसी अवसर पर पूना वालों के दुर्भाग्य से १६ मई १८७९ की रात को २ बजे पेशवाओं के स्मारक और शहर के अलंकार स्वरूप बुद्धिवार और विश्राम बाग के बाड़ों में आग लगी; और सवेरे तक वे दोनों बाड़े जल कर राख हो गये। उस समय बम्बई के गवर्नर (टेम्पुल साहब) की प्रकृति हम से उलटी थी। इसलिए उन के अधीनस्थ कर्मचारी भी दूध और पानी अलग २ न कर के केवल चोंचें मारने लगे। एंग्लो-इंडियन पत्र इस काम में इन्हें और भी सहायता देते थे। ऐसे अवसर पर बम्बई के टाइम्स ने बाड़ा जलाने वाले रानाडे का हमारे नाम के साथ बादरायणी सम्बन्ध लगा कर, सरकार के विचार और भी दूषित कर दिये। बाड़ों में आग लगने के आठ ही दिन बाद हुक्म आया—'तु-

छुट्टियाँ समाप्त होने की राह मत देखो। हुकुम पाते ही फौरन धूलें जा कर फर्स्ट क्लास सब-जज का चार्ज ले लो।' इसलिए हम लोगों को तुरन्त धूलें जाना पड़ा। चलते समय पूना के मित्रों ने बहुत दुःखित हो कर कहा—'इस समय आप की बदली करने में सरकार का गूढ़ हेतु है, इसलिए आप वहां सावधान रहें। अपने समान सारे संसार का मन निर्मल समझने से काम न चलेगा। नहीं तो आप सरकार से प्रार्थना करें कि आंखों के कष्ट के कारण धूलें का जल वायु हमारे अनुकूल न होगा, इस-लिए हमारी बदली वहां न की जाय।' इस पर आप ने उन लोगों से साफ कह दिया—'जब तक मुझे नौकरी करना है तब तक मैं कोई कारण नहीं लगाऊंगा। और यदि कभी ऐसा भी संयोग आ पड़ा, तो इस्तैफा दे कर अलग हो जाऊंगा।'

धूलें पहुंचने पर भी, पूना से इसी विषय के पत्र आते रहे। उन पत्रों में लिखी हुई एक बात तो अवश्य हम लोगों के सामने आई। एक महीने बाद हमारी डाक कुछ देर से आने लगी, और वह भी इस प्रकार मानो एक वार खोल कर और दुबारा गोंद से बन्द की गई हो। डाक में देर होने के कारण, हम लोग सिपाही पर नाराज होते, तो वह कहता—'सरकार मैं पोस्ट-

रयों लिफाफों सहित पुलिस सुपरिंटेंडेंट के पास भेज दी जाती थीं। इस प्रकार की कार्रवाई के कारण हम लोगों को बहुत दुःखित रहना पड़ता था।

यहां मेरी कोई सहेली नहीं थी, इसलिए आप की आज्ञा से मैं वहां की स्त्रियों को दोपहर के समय अपने घर बुलाने लगी। कई स्त्रियां हमारे यहां आ कर सीने पिरोने और टोपी तथा गुलूबन्द बुनने का काम करतीं, जिस में मेरा दोपहर का समय, आनन्द से बीतने लगा। इस के बाद शीघ्र ही आप की बदली हो गई, और हम लोग बम्बई चले गये।

---

[७]

सन् १८८१

३ जनवरी सन् १८८१ को आपने बम्बई के प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट का चार्ज लिया। आपकी यह बदली केवल तीन महीने के लिए थी। हम लोग डा० भाण्डारकर के पास, एक बंगला लेकर रहने लगे। उसी समय उनके घर की स्त्रियों से मेरी जान पहचान हुई। उन की बड़ी कन्या शान्ताबाई से मेरा अधिक प्रेम होगया। गृह-स्वामिनी बड़ी मिलनसार और धर्म्मनिष्ठा थीं; और उन के घर के सभी लोग सुखी, नीतिमान् और उद्योगी

थे। मेरी समझ में मेरे परिचितों में से डाक्टर साहब के परिवार के लोग सब से अधिक भाग्यवान् और सुखी थे। उन के घर में भेदभाव का नाम भी न था। २४ वर्षों तक शान्ताबाई से मेरा प्रेम रहा और इस अवसर में हम लोगों में कभी अनबन न हुई। सन् १९०४ में वह अपने बच्चों, पिता, पति और हम मित्रों को रुला कर, अक्षय सुख भोगने के लिए परलोक चली गईं।

उस समय पण्डिता रमाबाई के स्थापित आर्य महिला समाज के अधिवेशन प्रति शनिवार को प्रार्थना-समाज की पाठशाला में होते थे। उस में ८-१० स्त्रियां और ४-६ वृद्ध सज्जन आते थे। उस में सुनाने के लिए स्त्रियां कभी कभी कुछ पङ्क्तियां किसी विषय पर निबन्धस्वरूप लिख लातीं, अथवा किसी पुस्तक से उद्धृत कर लातीं; और डा० आत्माराम दादा, भास्कर-राव भागवत आदि वयोवृद्ध सज्जन, उत्साह दिलाने के लिए उस की प्रशंसा कर देते और हम लोगों से उसी विषय पर कुछ बोलने के लिए कहते। यदि हम में से कोई स्त्री बोलने के लिए तैयार न होती तो वे लोग स्वयं ही कुछ कह सुनाते और कहते-'इस प्रकार बोलना होता है।'

इस प्रकार अच्छी तरह बम्बई में अपना समय

बिता कर हम लोग पूना आये। बम्बई में मेरी पढ़ाई भी अच्छी होने लग गई थी।

सन् १८८१ में पूना में आप फिर अपनी पहली जगह पर (फर्स्ट क्लास सब-जजी पर) आगये। वहां आने पर अप्रेल में स्त्रियों की एक सभा स्थापित हुई, जिस का अधिवेशन प्रति शनिवार को, फीमेल ट्रेनिंग कालेज के एक कमरे में होने लगा। सभा में हम लोग आपस की १०—१२ स्त्रियां और ५—६ पुरुष आते थे। उन में से स्वर्गीय केरोपन्त नाना छत्रे सब से पहले आकर बैठ जाते और बोर्ड पर भूगोल खगोल सम्बन्धी आकृतियां बना कर हम लोगों को ग्रहों की चाल तथा ग्रहण का लगना आदि बातें बतलाते। कभी नक्षत्रों को देख कर समय और चन्द्रमा को देख कर तिथि जानने के उपाय बतलाते। और अन्त में हम लोगों को, जो कुछ सुना था, घर से लिख लाने या उसी समय खड़े होकर कह सुनाने के लिए कहते। खड़े होकर कहने की अपेक्षा हम लोग घर से लिख लाना ही अधिक उत्तम समझते। दूसरे शनिवार को हम लोगों के लेख देख कर वह बहुत प्रसन्न होते और प्रशंसा करते। यदि उस में कुछ भूल होती तो फिर से वह विषय समझाते, और उसे दुबारा लिखने के लिए कहते।

नाना मुझे संस्कृत सिखाया चाहते थे; और आप भी इस बात में सहमत थे। परन्तु उस समय घर की स्त्रियों के भय से वह विचार छोड़ देना पड़ा। सभा में आनेवालियो में, उस कालेज की दो एक शिक्षकाएँ भी थीं; जो अधिक पढ़ी हुई थीं। शेष स्त्रिया भी कुछ न कुछ जानती ही थी। मैं ही सब से अधिक वार और कम पढ़ी थी। परन्तु नाना मुझ पर कुछ विशेष कृपा रखते थे, और अधिकांश बातें मुझे ही समझाते थे। कभी कभी मेरी भूल पर, आपके सामने ही वह मुझे 'पगली लड़की' कह डालते। सभा सम्बन्धी अधिकांश बातें मैंने यहीं सीखीं। सभा में अधिक भीड़-भाड़ न होने के कारण, मुझे घर की स्त्रियों की बातें नहीं सुननी पड़ीं। मेरा सभा में जाने का अनुमान न करके, वे यही समझतीं कि मैं किसी सहेली से मिलने जाती हूं। हां, उन के डर के मारे मैं दिन के समय पढ़ न सकती; मेरी पढ़ाई केवल रात को ही होती थी।

---

[८]
पहिला दौरा।

चार मास पीछे आप की बदली असिस्टेंट स्पेशल जज की जगह पर हुई। साल में आठ महीने, आफ़िस

साथ ले कर आप को दौरा करना पड़ता; और उस दौरे में घर के लोगों के रहने बैठने के प्रबन्ध का अनुभव न होने के कारण, मुझे साथ न ले जाने का विचार था। मुझे इस बात का बहुत दुःख हुआ, परन्तु आगे की तरक्की का खयाल करके वह दुःख जाता रहा। फिर जब मैं ने सोचा कि आप के वापस आने तक मेरे दिन किस प्रकार बीतेंगे तो मैं रोने लगी। आपने मुझे बहुत ही तरह समझा कर कहा—'अपना मन दृढ़ करो। तुम्हें अंगरेजी पढ़ाने के लिए, कोई मास्टरनी ठीक हो जायगी। यदि घर की स्त्रियां नियमानुसार बोलें बिगड़ें, तो चुपचाप सुन लेना, और सहन करना। जो काम कहें, चुपचाप कर देना, किसी बात का उत्तर न देना।' दो तीन दिन बाद जनाना मिशन की सिस्टर्स में से मिस हरसूई नाम्नी एक स्त्री मुझे पढ़ाने के लिए रखी, जो दोपहर को दो से साढ़े तीन बजे तक, आकर पढ़ा जाती। घर की स्त्रियां इस बात से बहुत अप्रसन्न हुईं। उन्हों ने, बिना विशेष आवश्यकता पड़े, मुझ से न बोलने का नियम कर लिया।

आठ दिन पीछे आप दौरे पर सितारा गये। आठ दस दिन बाद मुझ से कहा जाने लगा—'मेम से छूकर, तुम न्हाती नहीं, केवल कपड़े बदल लेती हो, यह बात

ठीक नहीं है। यदि तुम्हें न्हाना न हो तो तुम ऊपर बैठी रहा करो, वहीं तुम्हारा भोजन पहुंच जायगा। अब तो तुम्हें भी मेम बनना है। घर के काम धन्धे के लिए तो हम लोग मजदूरनियां हैं हीं।' दूसरे दिन से मैं ने, पढ़ने के बाद न्हाना आरम्भ किया। कार्त्तिक अगहन के दिन, और तीसरे पहर ठण्डे पानी से स्नान करने के कारण, २०–२२ दिन पीछे मुझे ज्वर आने लगा। तीन चार दिन बाद उन लोगों ने, आपको मेरे ज्वर के सम्बन्ध में कई चिन्ताजनक बातें लिख भेजीं। इस अवसर पर, यह कह देना उत्तम होगा कि यद्यपि घर की स्त्रियां मुझ से बहुत असन्तुष्ट रहतीं थी, तथापि मेरे दोनों देवरों का व्यवहार मेरे साथ बहुत अच्छा था। जब स्त्रियां आपस में मेरी शिकायत करतीं, तो वे मेरा पक्ष लेते, इस कारण मुझे भी कुछ ढाढ़स बँध गया था।

मेरी बीमारी का पत्र जाने के दो तीन दिन पीछे ही संयोग से आप पूना आये। आप आठ दिन रहे। आप ने मुझ से कह दिया—'मेम को छूकर स्नान करने की आवश्यकता नहीं, केवल कपड़े बदल लिया करो। यदि वे अप्रसन्न हों तो उनके पास मत जाओ। चाहे जो हो, पढ़ना न छोड़ना। अब वे तुम्हें न्हाने के लिए न कहेंगीं। मैं एक महीने पीछे फिर आऊंगा, तब तक पढ़ाई आगे

होनी चाहिए।' दूसरे दिन दोपहर को मेम साहब के जाने पर, मेरी ननद ने कहला भेजा—'अब न्हा कर हमारे घर और बीमारी न लावे। हम लोग अपने कामों के लिए बहुत हैं। जो मन में आवे सो करे; आगे जो होगा देखा जायगा।' इसके बाद एक महीने तक अच्छी तरह पढ़ाई हुई; घर में भी शान्ति रही।

---

(९)

पण्डिता रमाबाई का पूना में आगमन और आर्य्य महिला समाज की स्थापना।

इसी अवसर पर मुझे यह सुन कर बहुत प्रसन्नता हुई कि पण्डित रामाबाई नाम्नी, संस्कृत की एक विदुषी स्त्री जिन्हें सारा श्रीमद्भागवत कण्ठस्थ है, और जिन्होंने शास्त्रार्थ में काशी के बड़े बड़े पण्डितों को जीता है पूना आने वाली हैं। दूसरे दिन शनिवार को जब मैं सभा में गई, तो वहां भी यही चर्चा हो रही थी। हम सभी स्त्रियां उन्हें देखने के लिए बहुत उत्सुक थीं। श्रीयुत भिड़े और मोड़क से पूछने पर जब हम को मालूम हुआ कि उन्हीं लोगों ने पण्डिता को बुलाया है, और वह इसी इमारत में उतरेंगीं, तो हम लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

हमारे घर की स्त्रियों को यह बात और भी बुरी लगी।

आगे चल कर उन्होंने 'आर्य्य महिला समाज' नाम की एक सभा स्थापित की, जिस में हमारी पहली सभा भी मिला ली गई, शनिवार को उस में पण्डिता बाई के व्याख्यान होने लगे। उन के व्याख्यान बहुत ही उत्तम और मनोहर होते थे, इसलिए शहर के, नये और पुराने सभी विचार के लोग, उस में अपने घर के स्त्री बच्चों को भेजने लगे।

इधर टोले मुहल्ले की स्त्रियां आ कर सासजी तथा ननद से, पण्डिताबाई तथा सभा के विषय में इधर उधर की अनेक बातें कहने लगीं। उन के कथनानुसार इस सभा का उद्देश्य स्त्रियों को स्वतन्त्र और स्वेच्छाचारिणी बनाना ही था। यद्यपि मेरी ननद पढ़ी लिखी और समझदार थीं, तथापि वह भी अपने पहले विचारों पर ही दृढ़ रहीं। अनेक बार सास जी तथा ननद मुझे इन सब बातों का पीछा छोड़ने के लिए बहुत तरह से समझाया करतीं; जब तक मैं उन के पास बैठी उनकी बातें सुनती, तब तक मुझे भी उन का कथन ठीक मालूम होता, और मैं मन में तदनुसार काम करने का विचार करती। परन्तु समय आने पर मुझे वे सब बातें भूल जातीं, और मैं फिर अपने पहले विचारों और व्य-

बहारों में लग जाती। इस का मुख्य कारण यही था कि मैं आप की अप्रसन्नता से बहुत डरती थी, इसलिए मैं घर की बड़ी बूढ़ियों की बातों की परवाह न कर के आप की इच्छानुकूल ही कार्य्य करती थी।

आप अपने नियमानुसार घर के लोगों से कभी कुछ भी न कहते और न अपना बड़प्पन जतलाने के रूप में किसी बात की मनाही करते या अनुमति देते। आप केवल यही चाहते थे कि मैं आप के इच्छानुसार कार्य्य करूं, और कुछ नहीं। और मैं भी तदनुसार ही कार्य्य करती—'भैया (आप) का सभा के लिए इतना आग्रह नहीं है। यह (मैं) स्वयं अपने मन से जाती है'। मुझे और पहली भाभी को भी तो भैया ने ही लिखना पढ़ना सिखाया था परन्तु हम से कभी उन्होंने ऐसी बातें करने के लिये न कहा। यदि वह जागीरदार की लड़की नहीं थी तो किसी भिखमगे की भी नहीं थी। वह सुशीला थी, यह तो एक दम पगली है, इसे जो कुछ कहो सब चुप चाप सुनती है, पर करती है अपने मन की ही है। इत्यादि कुछ न कुछ मेरी ननद रोज ही कहा करतीं।

सात आठ महीने बाद दौरा खतम हो गया, और आप घर लौटे। मुझे यह सुन कर बहुत प्रसन्नता हुई कि

अब आप बरसात भर घर ही रहेंगे। इन दिनों अब कभी कुछ आवश्यक काम होता, तो सरिश्तेदार या और कोई अहलकार घर पर ही आ जाते। आफिस घर पर ही था। आप को बाहर न जाना पड़ता था। शनिवार को दो बजे ही आप मुझ से कह देते—'आज तुम्हें सभा में जाना है, भूलना मत और न कोई बहाना निकाल बैठना।' मैं भी डरती २ ननद से कहती—'मैं सभा में हो आऊं।' और उन के 'हां, न' कहने का अवसर न देख धीरे से खिसक जाती। और लौटने पर, नियमानुसार मुझे सैकड़ों बातें सुननी पड़तीं। कभी २ मुझे बातें सुनाने में, सास जी तथा ननद के साथ, दूर पास के रिश्ते की भी स्त्रियां मिल जातीं। मैं सब चुप चाप सुनती। और बहुत होता, तो अकेले में रो धो कर, अपने मन का बोझ हलका कर लेती। शनिवार के बाद दो तीन दिन तक तो मुझ से कोई न बोलता; फिर धीरे २ घर के फुटकर कामों के लिए कहा जाता। उस समय मुझे ऐसी ही प्रसन्नता होती, जैसी किसी जाति-बाहर आदमी को फिर जाति में मिल जाने पर होती है। दो एक दिन बाद फिर शनिवार आ जाता, और मेरी वही दशा होती। इसी प्रकार एक वर्ष बीत गया। अब मैं अंगरेजी के दो चार वाक्य बोलने लग गई

के कारण, माता तुल्य ही मानते और मैं भी उन्हें ही 'सासजी' कहती। यदि सासजी की बात का कोई कुछ भी उत्तर देता तो आप बहुत नाराज होते। इसलिए सासजी की बातों का उत्तर देने का घर में किसी का साहस न होता था। वह जो कुछ कहतीं, सब को सिर झुका कर सुनना पड़ता। मैं भी उन का वैसा ही आदर मान करती। सास जी ने सब सुन कर, मेरी ननद से कहा—'आज कल जो बातें हो रहीं हैं, वे अच्छी नहीं हैं। 'औरत दूसरी और फजीहत तीसरी' वाली कहावत हमारे यहां ठीक उतर रही है। तुम्हारी मा भी तो दूसरे ब्याह में आई थी; परन्तु क्या मजाल, जो पराये आदमी के सामने होजाय। एक दिन आंगन में एक अहलकार पानी पीने आया; हम अन्दर न जाकर दरवाजे पर ही खड़ी रहीं। बस इसी ज़रासी बात पर हमारे देवर उससे चार दिन तक न बोले। कहां वे बातें और कहां आजकल का यह हाल। जो न हो, वही थोड़ा है।' रात को जब आप बाहर से आये, तो सासजी ने आप से कहा—'पहले की स्त्रियां, बोलना तो दूर रहा, मर्दों के सामने खड़ी भी न होती थीं। पुराणवाचन के सिवाय स्त्री पुरुष को किसी के साथ बैठे नहीं देखा। अब की औरतें, कुरसी

लगा कर मर्दों के साथ बैठती हैं, उन्हीं की तरह पढ़ती हैं, लिखती हैं, सब कुछ करती हैं। हमारे आदमियों के बीच में अंगरेजी पढ़ते इसे लाज न आई। पढ़ाने लिखाने से औरतों की आँख का पानी उतर जाता है। वेंकटेशस्तोत्र, शिवलीलामृत आदि पढ़ लिया, बहुत हुआ। अब भी इसे अंगरेजी पढ़ाना छोड़ दो। घर में चाहे जितना बिगड़ो, एक शब्द मुंह से नहीं निकालतीं; कैसी गरीब बनी बैठी रहती है। परन्तु बाहर जाकर, इतना ढीठपना कहां से आजाता है? जब से मैंने सुना है, हैरान हो रही हूं।' इत्यादि। सासजी की बातें सुनते सुनते, आपको दो तीन बार हंसी आई, परन्तु आपने कुछ भी उत्तर न दिया। मुझे बहुत अधिक दुःख हुआ; मैंने उस दिन भोजन भी न किया। यदि आप केवल इतना भी कह देते कि इसने अपने मन से नहीं, मेरे कहने से पढ़ा था, तो भी मुझे कुछ ढाढ़स होता। परन्तु यह सब कुछ भी न हुआ। रात को सोने के समय, आपने मुझ से हँस कर कहा—'क्यों, आज तो खूब बहार हुई! परन्तु अब तुम्हें और भी नम्र और सहन-शील हो जाना चाहिये। माताजी ने जो कुछ कहा वह अपने समय की समझ के अनुसार; उसमें उनका कुछ दोष नहीं है। परन्तु तुम्हें, उत्तर देकर, उन का मन न

दुःखाना चाहिए। मैं जानता हूं कि ऐसी बातें चुपचाप सुनना बहुत कठिन और कष्टदायक है; परन्तु इस कष्ट की अपेक्षा, यह सहनशीलता, तुम्हारे भविष्यजीवन में बहुत काम आवेगी। लोग तुम्हारे विरुद्ध चाहे, जितनी बातें कहें, इसी सहनशीलता के कारण तुम्हें उन से कुछ भी कष्ट न होगा। इसलिए किसी की परवाह न कर के, जो कुछ उत्तम और उचित जँचे वही करना चाहिए। इन लोगों का स्वभाव तीव्र है; तो भी निरुपाय होने के कारण, उन्हें कुछ उत्तर न देना चाहिए। मैं भी तो उनकी सब बातें चुपचाप सुन लेता हूं। हाँ, मेरी अपेक्षा तुम्हें अधिक कष्ट होता है, परन्तु मैं तो तुम्हारी ओर ही हूं न। इसलिए और धीरज धरना सीखो। यह कष्ट थोड़े ही दिनों के लिए है; सदा ऐसा ही न रहेगा।' इसी प्रकार और भी अनेक बातें कह कर आपने मुझे समझाया। इसके बाद मैंने आपकी प्रसन्नता के लिए सदा इसी नीति का अवलम्बन किया; तो भी मुझ से दो एक बार भूल हो ही गई, जिसके लिए मुझे आप से क्षमाप्रार्थना करनी पड़ी।

---

[१०]

दूसरा दौरा, सन् १८८२–८३

सन् १८८२ में दशहरे के पश्चात् आप दौरे पर सितारा गये। इस बार मैं भी साथ ही थी। हम लोगों के साथ पांच सात सिपाही, अहलकार, सरिश्तेदार, दो रसोइये, ऊपरी कामों के लिए एक ब्राह्मण, गाड़ी, नौकर चाकर, सब मिला कर कोई ३५–४० आदमी थे। इसके सिवाय, सात बैलगाड़ियां, दो तम्बू और एक घोड़ा गाड़ी भी थी। इस प्रवास में नित्य नये स्थान, नया जलवायु मिलने के कारण हम लोग बहुत प्रसन्न थे। इस प्रवास से आपकी तबीअत विशेषतः आंखें बहुत अच्छी रहीं। निश्चित स्थान पर हम लोग सुबह आठ नौ बजे तक पहुंच जाते। गाड़ी में हम लोगो के साथ एक सिपाही, गद्दी तकिया, कलम दवात, जलपान और पानी की सुराही रहती थी। गाड़ी से उतर, सब कामों से निवृत्त हो, अच्छे छायादार स्थान में आप दफ़्तर लेकर बैठते और मैं भोजन का प्रबन्ध कराती। चाहे भूख कितनी ही अधिक क्यों न लगी और भोजन कितना ही अच्छा क्यों न बना हो, आप जलपान में नियमानुसार चार पांच ग्रास से अधिक न खाते। हां, साथ के अहलकारों के भोजन की आप

सब से पहले चिन्ता करते; इसलिए उन लोगों के लिए भी कुछ जलपान की व्यवस्था पहले ही कर रखनी पड़ती। इसके बाद आप काम करने बैठते और सिर नीचा किये लगातार लिखते रहते; कभी कभी विश्राम के लिए दो चार मिनट रुक कर सिर ऊपर कर लेते। सामने के वृक्ष या जल देख कर तबीअत हरी हो जाती तो कभी कभी एकाध श्लोक या पद कहने लगते, और फिर अपने काम में लग जाते।

दो घण्टे बाद स्नान और भोजन कर के साथ के लोगों का हाल चाल पूछते। डाक देख कर आप विश्राम करते, और मैं तब तक आज्ञानुसार पत्रों के उत्तर लिख रखती। आधे, पौन या अधिक से अधिक एक घण्टे बाद जब आप सो कर उठते, तो मैं सब उत्तर पढ़ सुनाती और बन्द करके छुड़वा देती। इस के बाद मैं रघुवंश के दो तीन नये श्लोक आप से पढ़ती। इस के बाद आप आफिस चले जाते और मैं अखबार पढ़ती या आई हुई किसी स्त्री से बात चीत करती और यदि उस स्थान पर देखने योग्य कोई चीज होती, तो उसे देखने चली जाती। सन्ध्या समय वहां के अहलकार, सेठ साहूकार और मास्टर आदि आप से मिलने आते। कभी कभी आप उन लोगों के साथ घूमने भी चले जाते। आप

चलते बहुत तेज थे, इसलिए कुछ लोगों को अभ्यास न होने के कारण, आपके साथ चलने में कठिनता होती। ऐसे लोग दूसरे दिन टहलने का समय बिता कर आते। टहल कर लौटने पर, बहुत से लोग अधिक रात गये तक बैठे रहते। उनसे आप वहां की मालगुजारी, और फसल आदि का कुल हाल पूछते और वहां के लोगों का हाल चाल, व्यापार, विनोद, पुराण, त्यौहार, भजन मण्डली, पाठशाला आदि सभी विषयों की जानकारी हासिल कर लेते। रात को भोजनोपरान्त, मैं अपना दिन भर का कुल हाल कह सुनाती। आप पूछते कि यहां की स्त्रियों से क्या क्या बातें हुईं, तो मैं कह देती—'कुछ नहीं, यों ही इधर उधर की बातें होती थी।' इस पर आप हंस कर कहते—'हां, ठीक ही है। तुम पढ़ी लिखी, शहर की रहने वाली हो; वे बेचारीं गँवार। वे तो योंही तुम्हें देख कर दब जाती होंगीं।' इसी प्रकार की बहुत सी द्व्यर्थक बातों से आप मुझे लज्जित किया करते। इस प्रकार घण्टा भर विनोद होने के बाद, कोई अहलकार आ कर अंगरेज़ी अख़बार पढ़ सुनाता। उस समय मैं आप के तलुवों में घी लगाया करती, क्योंकि बिना इस के रात को आप को नींद नहीं आती थी। इस प्रकार दस ग्यारह बजे हम लोग सोते। आप की

नींद तो चार साढ़े चार घण्टों में ही पूरी हो जाती, परन्तु मैं अधिक सोती। तो भी तीन चार बजे तक आप मुझे जगा लेते और पुस्तक ले कर श्लोक तथा पदादि पढ़ने लगती। आप उसका अर्थ समझाने में कभी कभी मग्न होकर, चुटकी या ताली बजाने लग जाते। नामदेव के कोई कोई पद मुझे कई बार पढ़ने के लिये कहते, और कभी २ वह पुस्तक लेकर आखों से लगा लेते। इस समय प्रातःकाल के उजाले में, आप का भक्तिपूर्ण मुख बहुत ही मनोहर मालूम होता, और आप के प्रति आप ही आप प्रेम और पूज्यबुद्धि उत्पन्न होती। मेरे मन में आता कि मैं अपने सम्बन्ध और सांसारिक दृष्टि ही से यह सब देख रही हूं, तो भी यहां सामर्थ्य और दैवी-भाग अधिक है; परन्तु मेरे ये विचार अधिक समय तक न ठहरते। इस विषय मे, आपसे पूछने के लिये मैं सिर उठाती, परन्तु ज्यों ही आप की ओर मेरी दृष्टि मिलती, त्योंही, मेरे सारे विचार बालू की भीत के समान ढह जाते। उसी समय आप कह बैठते—'क्या कुछ टीका करने का विचार है? हम लोग सीधे सादे आदमी किसी प्रकार भजन करते हैं। तुम अंगरेजी पढ़ी हो तुम्हें यह सब थोड़े ही अच्छा लगेगा'। मैं लज्जित हो कर उठ जाती। इसी प्रकार रोज हुआ करता।

प्रत्येक ताल्लुके मे हम लोग दो तीन दिन रहते। यदि वहा की कन्या पाठशाला के मास्टर निरीक्षण के लिए निमन्त्रण देने आते तो आप उन्हे मेरे पास भेज देते। मैं समय आदि निश्चित कर लेती। रात को आप पूछते—'व्याख्यान की तैयारी है क्या? हम ने भी कुछ सुनगुन सुनी थी परन्तु काम में फँसे रहने के कारण कुछ समझ न सके। रास्ता चलते कुछ लोग कहते जाते थे कि एक मोटी ताजी विद्वान् औरत आई है कल उस का कन्या पाठशाला में व्याख्यान होगा परन्तु हम काम में थे कुछ ख्याल नही किया परन्तु फिर भी अन्दाज से समझ लिया कि यह सब तुम्हारे ही विषय में था'। ये बातें आप ऐसी गम्भीरता से कहते थे कि सुनने वाला उन्हें बिलकुल ठीक मान लेता। अवकाश के समय आप इसी प्रकार विनोद किया करते। मै भी कह देती—'इन सब में केवल ' मोटी ताजी वाली ' बात ही मेरे लिए ठीक है, बाकी सब कल्पना है'। दूसरे दिन जब मैं पाठशाला देख आती तो फिर वही विनोद आरम्भ होता। यदि कभी कारणवश किसी स्थान की पाठशाला देखने मैं न जा सकती तो नाराज होते और कहते—'जब कोई बुलाने आवे तो जा कर देख आने में क्या हर्ज है? कुछ बोझा ढोना पड़ता है या तुम्हारे जाने से

उस की मोक्ष होती है ? हम जो कुछ कहते हैं वह केवल विनोद के लिए ही; उस का विचार न किया करो'। क्या इस प्रकार का आनन्दपूर्ण प्रवास प्रिय न होता ?

एक बार हम लोग तारागांव गये। वहां की पाठ-शालाओं के डि० अ० इन्स्पेक्टर ने आप से लड़कों और लड़कियों को अपने हाथ से इनाम बांटने की प्रार्थना की। आप ने स्वीकार कर लिया और रात को मुझ से कहा—'परसों तुम्हें कन्या पाठशाला में इनाम बांटना होगा। इस अवसर पर कुछ कहने के लिए तैयार हो जाओ। वहां केवल स्त्रियां ही आवेंगी पुरुष नहीं। वहां अपनी फजीहत न कराना। यदि यों बोल न सको तो पहले से लिख लेना'। मैं ने कहा—'मेरे हाथ पांव तो अभी फूल गये परसों क्या होगा सो राम जाने। हां, आप यदि कुछ बोल देते तो मैं लिख लेती'। आप ने कहा—'यह बात हमें पसन्द नहीं, तुम स्वयं लिख लो। यदि कुछ बढ़ाने घटाने की आवश्यकता हुई तो मैं उसे ठीक कर दूंगा। वहां तुम्हारे लिए घबड़ाने की कोई बात नहीं होगी'। नियत समय पर मैं सभा में गई। वहां ५०—७५ स्त्रियां उपस्थित थी। बालिकाओं की कविता और रिपोर्ट पढ़ी जा चुकने पर मेरे बोलने का समय आया। मेरे हाथ पैर कांपने लगे। दो तीन मिनट तक मैं यों ही

खड़ी रही परन्तु अन्त में हिम्मत कर के मैं ने कुछ कह ही डाला। घर आने पर आप ने कई बार सभा का हाल पूछा पर मैं ने कुछ न कहा। अन्त में रात को सोते समय आप ने गम्भीर हो कर फिर पूछा; इस पर मैं ने सभा का कुल हाल कह सुनाया और अपने भाषण का सारांश भी कह दिया। मैं ने अपनी वक्तृता में कहा था 'शिक्षा के कारण स्त्रियां स्वतन्त्र या मर्य्यादारहित नहीं होतीं। सुशिक्षा से पुरुष और स्त्री दोनो ही विनय-सम्पन्न और नम्र होते हैं। विद्या, सम्पत्ति और अधिकार प्राप्त कर के नम्र होने और पति तथा बड़ों का आदर करने और उन के आज्ञानुसार चलने में ही आप का कल्याण है इत्यादि'। यद्यपि आप ने कुछ उत्तर न दिया तो भी मालूम होता था कि इस से आप का सन्तोष हो गया। इसके बाद हम लोग वाई और महाबलेश्वर गये। इस के बाद प्रतापगढ़ जा कर वहां का क़िला, देवी का मन्दिर तथा वह स्थान देखा जहां पर शिवाजी ने अफ़ज़ल ख़ां को मारा था।

---

[११]

एक विद्यार्थी।

गत तीस चालीस वर्षों से हमारे यहां सदा चार पांच विद्यार्थी ऐसे रहते आये हैं, जिनके सब व्ययभार

हम लोगों पर ही होते हैं । अन्य धर्म्म-कार्य्यों की अपेक्षा यह कार्य्य आप सदा अधिक उत्तम समझते रहे। विद्याभ्यास से जो समय बचता, उसमें ये विद्यार्थी, घर का हिसाब रखते और चीज वस्तु लाने का काम करते । उनमें से जो अधिक होशियार होता, वह बिल के रुपये आदि भी चुकाता । नियमानुसार हमारे यहां कोई चीज उधार नहीं आती थी । यदि सौ दो सौ रुपए का कोई माल आता और आपसे आज्ञा न लेने के कारण, यदि दस पांच दिन तक उसका दाम न चुकता, तो भी महीनेके समाप्त होने पर वह हिसाब अवश्य साफ कर दिया जाता । इन सब का प्रबन्ध मेरी ननद करती थीं ।

उन दिनों हमारे यहां एक भट कोकण लड़का था। जमा खर्च का काम उसी के सपुर्द था। नियत तारीख के अन्दर ही नौकरों की तनख्वाह, तथा बाहरी बिल चुका देने का, हमारे यहां नियम था । रुपए पैसे हाथ में रहने के कारण भट बिगड़ कर वाहियात बातों में पड़ गया । एक बार उसने दो महीने के खर्च के कुल रुपए घर से लेकर इधर उधर खर्च कर दिये और किसी को कुछ न चुकाया । एक दिन ननद ने बनिये से पाव भर काजू मगाये । उस बनिये की बातों से मालूम हुआ कि उसे

दो महीने से एक पैसा नहीं मिला। इस प्रकार भट का भगड़ा फूटा।

भट से जब यह बात पूछी गई, तो उसने कहा 'मैंने तो सब का हिसाब साफ कर दिया।' इसके बाद ननद ने सिपाही भेज कर जब दरियाफ़्त कराया तो मालूम हुआ कि दो महीनों से किसी का भी हिसाब साफ़ नहीं हुआ। इस पर ननद ने सिपाही से डेवढ़ी पर बैठने और भट को घर से बाहर न निकलने देने के लिए कहा।

उस दिन दशहरा था। ननद का विचार था कि पहले सब व्यौपारियों को अपने सामने बुला कर और उन से सब हाल स्वयं पूछ कर तब यह बात आप के सन्मुख पेश करें। उधर भट ने अनेक बहानों से बाहर जाना चाहा परन्तु सिपाही ने उसे जाने न दिया; इस-लिए वह पिछवाड़े की दीवार लाघ कर निकल भागा। ननद ने विद्यार्थियों से यह बात सुन कर मुझ से कही। उस समय मेरे ध्यान में यह बात न आई कि आज त्यौहार के दिन, यदि भोजन से पूर्व ही यह बात आप से कही जायगी; तो अभी एक बखेड़ा खड़ा हो जायगा। मैंने तुरन्त कुल बातें आप से कह दीं। यद्यपि आपने कुछ उत्तर न दिया, तो भी आप दुःखित से दीख पड़े। भोजन के समय आपने एक सिपाही से कहा—'जाओ,

उस लड़के को खोज कर पकड़ लाओ; परन्तु मारना पीटना नहीं।' जब सिपाही बड़बड़ाता हुआ, उसे पकड़ने के लिए जाने लगा, तो सास जी ने उससे पूछा कि इतनी जल्दी यह बात आप तक कैसे पहुंची ? इतने में ननद् ने कहा—'त्यौहार के दिन क्लेश न होने के लिए, तो मैंने विचारा था कि यह बात भोजनोपरान्त कहूंगी। वह लड़का क्या हमारा काका मामा था, जो मैं ने उसे भगा दिया, और इसने चट ऊपर जा कहा ?' सास जी ने बिगड़ कर कहा—'अब तक तो इसे ऐसी चुगली की आदत नहीं थी। मैं तो इसे ऐसा नहीं समझती थी। नित्य एक नया गुण निकलता आता है। सभा में यह जाय; अंगरेज़ी यह पढ़े; घर में आने जाने वाले लोग इसे अच्छे न लगें, मेम बन कर कुरसी पर बैठी रहे। दिन पर दिन घर की मालिकनी बनी जाती है परन्तु जब तक हम हैं, तब तक इस की तो न चलने देंगे। इस तरह चुगली होने लगी, तो फिर घर के लोगों का ठिकाना कहां। हरी ने चोरी की तो हमारा नुकसान हुआ। क्या इसके बाप को डाड़ भरना पड़ता ? इसी प्रकार बहुतसी बातें जोर जोर से कही जाने लगीं। नीचे उतरते हुए, आपने भी दो तीन अन्तिम वाक्य सुन ही लिए, आपने खड़े हो कर कहा—'असल बात तो

तुमने हम से कही नहीं, और उलटे चोर की तरह से घर के लोगों से लड़ने लगी। वह हम से न कहती तो किससे कहने जाती ?' सासजी ने और अधिक बिगड़ कर कहा—'घर वाली को बैठा कर उसकी पूजा तुम्हीं करो। तुम समझते होगे कि अंगरेज़ी पढ़ कर हम बड़े लायक हुए हैं; परन्तु यह कोई लायकी नहीं है। अगर हम लोग अच्छे न लगते हों, तो घरवाली का पक्ष ले कर हमारा अपमान मत करो; सीधी तरह से कह दो, हम घर से चली जायँ।' क्रोध में आप के मुंह से निकल तो गया—'तो नाही कौन करता है?' परन्तु जब अपनी भूल का ध्यान आया, तो धीमे पड़े गये, और बहुत तरह से समझाने की चेष्टा करने लगे—'घर में तुम्हीं बड़ी हो; जिससे जो चाहो, कहो। यदि मुझसे भी किसी समय कोई भूल हो जाय तो तुम मेरा कान पकड़ सकती हो। तुम चाहे जो कहो, परन्तु इतना ज़रूर जाच लो कि असल बात क्या है। असावधानी से मेरे मुंह से जो बात निकल गई, उसके लिए मैं तुम से क्षमा मागता हूं।' इस प्रकार बहुत सी बातें कह कर, आपने उनको शान्त किया।

श्वशुर जी तथा आपको सदा ताकीद रहती थी, कि घर की बड़ी स्त्री को सब लोग मर्य्यादा रखें, और उन से दबें। इसीलिए वह भी कभी किसी की बात न

सह सकती थीं। ऐसी दशा में यदि घरवाली के पक्ष पर किसी को बोलते सुन कर, उन्होंने अपना भारी अपमान समझा तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? क्षमा मांगने पर सास जी का क्रोध तो जाता रहा, परन्तु आपको अपने कहने पर बहुत समय तक पछतावा रहा। सास जी की मृत्यु के बाद, आपने अपनी बहिन और भाई को जो पत्र लिखा था, उसमें, बहुत दुःखित होकर, इस भूल का भी जिक्र किया था। ताई-सास का देहान्त, शके १८०७ के भाद्रपद में हुआ था।

---

[१२]

स्पेशल जज के स्थान पर बदली।

सन् १८८३—८४।

पूना और सितारा ज़िलों के ताल्लुकों के कान्सलिएटरों के दफ्तरों के निरीक्षण का काम आप के सुपुर्द था। आपसे पूर्व जो अफसर थे वह एक स्थान पर ठहर कर आस पास के स्थानों के कान्सलिएटरों को वहीं बुलाते और उन के दफ्तरों का निरीक्षण करते परन्तु आप ऐसा न करके प्रत्येक स्थान पर स्वयं जाते थे। इस कारण हमें तथा साथ में जाने वाले अहलकारों को गांवों देहातों में खाने पीने का बहुत कष्ट होने लगा।

इस पर मैं ने कहा—'यदि प्रत्येक गांव में न जा कर ताल्लुके में ही सबो को बुला कर निरीक्षण हो तो हम सब को इतना कष्ट क्यो सहना पड़े?' इस पर आप ने कहा—'सरकार ने हमें चैन से भत्ता लेने के लिए नियुक्त नहीं किया है। हमारी नियुक्ति से सरकार का मुख्य उद्देश्य कृषकों की अड़चनों को जानना और उन्हें दूर करना है। परन्तु गांव देहात में जाने का कष्ट न उठाने से वह उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। गावो में जा कर ही हम वहा के निवासियों के मन की बातें जान सकते हैं। व्यर्थ कष्ट उठाने का हमें शौक नही है'।

---

[१३]

डिबिया खोई।

इसी वर्ष हम लोग दौरे पर सितारा जिले के कोरेगांव मे पहुंचे। गांव मे पहुंचने से पूर्व सवेरे के समय हम लोग वसना नदी के किनारे सब कृत्यों से निवृत्त हुए। जलपान कर के आप टहलते हुए आगे चले गये और मुझ से गाड़ी कसवा कर आने के लिए कह गये। आप के चले जाने पर मैं चाबुक से पेड़ में लगे हुए छोटे छोटे आम तोड़ने लगी। इसी समय चाबुक की रस्सी के सिरे में लग कर मेरे हाथ का छन निकल गया जिसे

मैं ने जमीन पर गिरते न देखा । न जाने वह कहीं पेड़ की डाल में अटक गया या जमीन पर ही गिर पड़ा। गाड़ीवान और सिपाही के बहुत ढूंढ़ने पर भी न मिला। लाचार हो मैं गाड़ी कसवा कर आगे चली। एक मील चलने पर भी जब आप न मिले तो मुझे अपनी मूर्खता पर बहुत दुःख हुआ। उन ढूंढ़ने में ही मुझे देर लगी थी इसलिए आप को अधिक दूर तक पैदल चलना पड़ा। दूसरे मील पर जब आप मिले तो मैं ने सब हाल कह सुनाया। आप ने गम्भीर हो कर कहा—'बिना पूछे तुम ने दूसरे के आम तोड़े यह बुरा किया। उसी की सजा तुम्हें मिली है। न तो अब मैं उस की खोज ही करूंगा और न नया बनवा दूंगा जिस से तुम्हें याद रहे।' दिन भर मैं दुःखी मन से सब काम बड़ी होशियारी से करती रही। रात को भोजन के समय आप ने ब्राह्मण से कहा—'सवेरे वाले ७५) के आम की चटनी तो लाओ'। उन आमों को किसी ने छूआ भी नहीं था इसलिए ब्राह्मण चुप रहा। दिन में जब जब मैं ने उन आमों को देखा तब तब मुझे एक प्रकार की नसीहत मिलती रही। जब चटनी न आई तो आप ने कहा—'उन के लिए इतनी दुःखी होने की आवश्यकता नहीं। आज दोपहर को हमारी भी एक जरते की डिबिया खो गई। एक चीज

हमारी खोई और एक तुम्हारी दोनों बराबर हो गय। हमारी डिबिया कीमती नहीं थी तो भी उस के विना हर्ज अधिक है। चीज खोने से अपनी असावधानता ही प्रतीत होती है, और कुछ नहीं इसलिए सावधान रहना चाहिए परन्तु उस के लिए दिन भर दुःखी रहने की ज़रूरत नहीं। सदा हँसी खुशी से रहना चाहिए जिस में देखने वाले को भी अच्छा मालूम हो। इस के बाद फिर कभी उस खोई चीज का जिक्र नहीं आया।

---

[१४]

अनसूया बाई का पुराण।

इसी अवसर पर, संस्कृतज्ञ, पुराण कहनेवाली अनसूया बाई पूना आईं। उन के साथ उन के पति तथा वृद्ध पिता भी थे। पण्डिता रमाबाई की भांति यह भी श्रीमद्भागवत् और संहिता बांचती और अर्थ कहती थी। हमारे तथा और कई लोगों के घर उनकी कथा हुई। इस के बाद एक बार, विष्णुमन्दिर में उनका पुराण होना निश्चय हुआ। उस अवसर पर कुछ स्त्रियों ने निश्चय किया कि—'सुधारकों की स्त्रियों को यहां साथ बैठने को जगह न दी जाय। हां, मण्डप में पुरुषो के स्थान के पीछे उन को थोड़ी जगह छोड़ दी जाय। जब

वे सभा में मर्दों के बराबर कुरसी लगा कर बैठती हैं, तो फिर यहाँ उनके लिए अलग जगह की क्या आवश्यकता है?' नये और पुराने दोनों विचारों की स्त्रियों से मेरा मेल था; इसलिए यह बात मुझ तक भी पहुंची। परन्तु कथा में जाने का समय होगया था, इससे कोई उपाय न हो सकता था। मुझे यह बात बहुत बुरी मालूम हुई। मैं कथा में गई और वहा पण्डिता रमाबाई के पास १५-२० मिनट बैठ कर, और जी अच्छा न होने का बहाना कर के घर लौट आई। घर आकर मैंने सासजी से कह दिया कि मन्दिर में स्त्रियों ने मुझे पुरुषों के साथ बैठाने की तरकीब की थी; परन्तु मुझे यह बात बुरी मालूम हुई और मैं चली आई। इस पर सासजी ने मेरी समझ की तारीफ़ की।

सन्ध्या समय जब आप घर आये, तो मैं नियमानुसार कपड़े उतारने के लिए गई। आपने पूछा-'आज तुम्हें क्या हुआ है?' मैंने कहा—'कुछ भी तो नहीं।' इस पर आपने स्वयं ही कपड़े उतार कर खूंटी पर रक्खे। बूट उतारने के लिए मैं झुकी, तो आपने चुपचाप मेरा हाथ बूट पर से हटा दिया, और स्वयं फीते खोले। मैं दस पन्द्रह मिनट तक चुपचाप खड़ी रही; परन्तु आपने कुछ कहा सुना नहीं। अब मैं मतलब समझ गई और

मन ही मन बहुत डरी। रात को भोजन के समय जब मैं दुबारा परोसने लगी, तो मुंह से 'नहीं' न कह के, केवल हाथ के इशारे से मना कर दिया। और किसी ने तो इस पर ध्यान न दिया, परन्तु मेरे मन में वह बात लग गई। मैं और भी दुःखी होगई। रात को जब मैं पढ़ने लगी, तब भी आप कुछ न बोले। यद्यपि पढ़ने में मुझ से दो तीन ग़लतियां हुईं, तो भी आपने नहीं टोका। किताब रख कर मैं पैर में घी लगाने लगी। मन में सोचा, कभी तो कहेंगे–'बस कर', परन्तु वह भी नहीं हुआ। आप सोगये; आध घण्टे बाद करवट बदली, और फिर भी बिना कुछ कहे सो गये। मैं उसी तरह घी लगाती रही। परन्तु इस बार करवट लेने पर आपको नींद नहीं आई। तौ भी आप सोने का बहाना कर के पड़े रहे। आज तक इस प्रकार कभी चुप्पी न साधी थी, इसलिए मुझे अत्यन्त खेद हुआ। मुझे रुलाई आने लगी। मैंने मन में कई बार विचार किया कि अपनी भूल स्वीकार कर के क्षमा प्रार्थना करूं, परन्तु बहुत हिम्मत करने पर भी, मुंह से एक शब्द भी न निकला। इसी प्रकार सारी रात बीत गई, दोनोंको ही नींद न आई। प्रभात होने पर आप उठ कर बाहर गये। मुझे आज तक ऐसा कठिन दण्ड कभी न मिला था, इसलिए मैं

खूब रोई। थोड़ी देर बाद मुंह धोकर नीचे गई, परन्तु वहां भी चैन न पड़ा।

नियमानुसार मैं भोजन के प्रबन्ध में लगी; परन्तु मन किसी काम में न लगा। अन्त में मैं जी अच्छा न होने का बहाना कर के ऊपर गई। वहां आपके निकट जाकर मैंने कहा—'मुझ से भारी भूल होगई अब मैं ऐसा कभी न करूंगी। कल सन्ध्या से न जाने क्यों मुझे चैन नहीं पड़ रहा है।' थोड़ी देर ठहर कर, आपने कहा—'ऐसी बातों से तुम्हें तो कष्ट होता ही है, साथ में मुझे भी होता है। नियमविरुद्ध आचरण किसी को भी अच्छा नहीं मालूम होता। यदि पहले से ही समझ बूझ कर काम हो, तो दोनों में से किसी को भी कष्ट न हो। जाओ, अब कभी ऐसा न करना।' मैं नीचे उतर आई और पुनः स्नान कर के रसोईघर में चली गई। इस के बाद फिर आजन्म कभी ऐसा प्रसंग नहीं पड़ा।

कुछ दिन बाद हीराबाग में, एज्यूकेशन कमिशन की एक सभा हुई। उस में स्त्रीशिक्षा पर पण्डिता रमाबाई का और मेरा भाषण हुआ। पण्डिता का भाषण बहुत अच्छा हुआ। मैं ने भी ज्यों त्यों कर के दो चार वाक्य कहे। पीछे आप की बातचीत से मालूम हुआ कि पहले भाषण की अपेक्षा इस बार का भाषण कुछ अच्छा हुआ

था। भविष्य में भी ऐसी ही सभाएं—जिन में नवीन और प्राचीन सभी विचार की स्त्रियां एकत्र हों—करने के विचार से, आपने उसका खर्च और लोगों से न मांग कर स्वयं अपने पास से करने की आज्ञा दी। तदनुसार कुछ समय बाद हम लोगों ने तत्कालीन गवर्नर की स्त्री लेडी रे को एक पार्टी दी। वह पार्टी पूना में अपने ढङ्ग की पहली थी। उस में हिन्दू स्त्रियों के लिए केवल फल तथा मेवे आदि का अलग प्रबन्ध किया गया था, इसलिए उस से कोई असन्तुष्ट नहीं हुआ। यूरोपियन तथा अन्य जाति की स्त्रियों के लिए फल तथा मेवों के अतिरिक्त देशी पक्वान्न भी तैयार किये गये थे, जो उन्होंने बहुत पसन्द किये। इस के बाद पान सुपारी हो चुकने पर सब लोग अपने अपने घर गये। यह पार्टी सब ने पसन्द की।

इस के बाद आप स्थानीय स्माल काज कोर्ट के जज हुए। इस के कुछ कालोपरान्त आप की नियुक्ति भारत की फायनेन्स कमिटी (Finance Committee) में हुई; जिस के कारण सन् १८८६ के चैत्र मास में हम लोगों को शिमला जाना पड़ा।

[१५]

फायनैन्स कमेटी में नियुक्ति और शिमला-यात्रा ।

पूना से चल कर हम लोग अहमदाबाद में आबा साहब कार्थवटे के यहाँ ठहरे । उस समय आप के परम मित्र रा० ब० शंकर पाण्डुरंग पण्डित, सरकार की अप्रसन्नता के कारण, खाली बैठे थे । उन्हें भी आपने आग्रह पूर्वक, शिमला ले चलने के लिए साथ ले लिया था । यहीं पर आप के मित्र भावनगर के हरिप्रसाद सन्तुकराय देसाई भी सपरिवार शिमला जाने के लिए हम लोगों में मिल गये । इस प्रकार स्त्रियां बच्चे नौकर चाकर आदि सब मिला कर, हम लोग ३५ — ४० आदमी हो गये ।

अहमदाबाद से हम लोग जयपुर आये । दिन भर वहाँ रह और वहाँ के प्रसिद्ध स्थान देख कर रात की गाड़ी से हम लोग अम्बाले को चले । उस समय अम्बाले से आगे रेल न थी । हम लोग तांगों की सवारी से कालिका गये । वहा के प्रसिद्ध उड़िया गार्डन की सैर की । यह बाग बहुत उत्तम और देखने योग्य है । वहाँ से चल कर रात के ८ बजे हम लोग शिमला पहुंचे । वहाँ हम लोग

अर्की के राजा साहब का बंगला किराये पर लेकर रहने लगे। बंगला दुमंजिला और बड़ा था, इसलिए दोनों परिवारों के लिए काफी था।

सन्ध्या समय हम सब लोग एक साथ टहलने के लिए निकलते। उस समय शिमले की सड़कें टेढ़ी तिरछी और ऊंची नीची थीं। हम लोगों के चलने से प्रायः सड़क भर जाया करती थी। रास्ते में अंगरेज लोग कभी कभी हमारे चपरासियों से पूछते। 'यह कहां के राजा है?' तो वे उत्तर देते—'पूना के।' तात्पर्य्य न समझ कर वे फिर पूछते—'पूने सितारे के राजा?' और जब उन्हें उत्तर मिलता 'हां' तो उन का समाधान सा हो जाता।

शिमला में हम लोग चार मास तक रहे, परन्तु हम लोगों का जी कभी उचाट न हुआ। सवेरे और दोपहर का समय अपने २ कामों में निकल जाता और सन्ध्या का समय टहलने में। रात को नौ बजे तक रा० ब० पण्डित आप को अंगरेजी अखबार सुनाते। श्रीयुत पंडित यह काम बहुत प्रेम पूर्वक करते। बीच २ में वह विनोद के के लिए कह बैठते—'अब बस करो। सिर दुःखने लगा, भूख लगी है' आदि। आप हँस कर धीरे से कहते—'अरे, ऐसा क्या? यह कालम तो पढ़ लो। अब तक

तुम्हारा लड़कपन न गया। छोटे बच्चों की तरह अड़ते हो।' पण्डित जी फिर पढ़ने लग जाते, और थोड़ी देर बाद फिर कोई न कोई ऐसी चाल निकाल बैठते जिसमें दोनों को हँसी आ जाती। नौ बजे के बाद भोजन होता। भोजन में भी इसी प्रकार विनोद और हास्य हुआ करता।

शिमला आने से पूर्व ही, बम्बई सरकार रा० ब० पण्डित से अकारण ही नाराज हो गई थी। जिस दिन पूना में फीमेल हाई स्कूल खुला था, उस दिन वहां श्रीमन्त सयाजीराव गायकवाड़, लॉर्ड रे गवर्नर, तथा अन्य अधिकारी उपस्थित थे। आवश्यक कार्य्य के कारण गायकवाड़ निश्चित समय से आध घंटा पूर्व ही उठ गये थे। पण्डितजी उस स्कूल के प्रबन्धकर्त्ता थे। कार्य्य क्रम से समय अधिक लग जाने के कारण आप ने उस समय लड़कियों के गीत कुछ कम कर दिये। इस कारण लॉर्ड रे साहब दोनों से ही बहुत असन्तुष्ट हो गये। उन्होंने इस का मूल कारण राजद्रोह समझा और राई का पहाड़ बना कर तीन चार दिनों के अन्दर ही रा० ब० पण्डित को सस्पेण्ड कर दिया। इस कार्य्य से पंडित जी तथा उन के मित्र आप बहुत ही दुःखित हुए। यह अकारण अपमान पंडितजी के जी को लग गया। उन्हें

भोजनादि कुछ भी अच्छा न लगता था और वे सदा उदास रहते थे। इस कारण आप सदा पण्डित जी को प्रसन्न करने और उन का मन बहलाने की चेष्टा किया करते थे। सदा कुछ न कुछ विनोद हुआ करता था। आप कभी दो चार घंटे उन्हें एक ही विचार में न रहने देते थे। सन्ध्या समय आप उनके दिन भर के कामों का हिसाब लेते और हास्य विनोद में समय बिताते। पंडित जी भी ऊपर से अपनी प्रसन्नता दिखलाने की चेष्टा करते और सदा इसी प्रयत्न में रहते कि हमारी किसी बात के लिए आपको किसी प्रकार की चिन्ता न करनी पड़े। एक दिन संध्या समय आप ने माधवराव कुंटे की बहुत कुछ प्रशंसा करते हुए कहा—'हमारी मित्र-मंडली में कुंटे की धारणा शक्ति और स्मरण शक्ति बहुत अच्छी है'। इस पर पण्डित जी ने जरा आवेश में आ कर कहा—'उनमें कौन सी विशेषता है? दृढता पूर्वक मनुष्य सभी काम कर सकता है। यदि आप ही कोई नई बात सीखना चाहें तो क्या नहीं सीख सकते?' आप ने कहा—'हमारी बात छोड़ दो, हमें काम बहुत हैं। यदि तुम फ्रेञ्च सीखना चाहो तो सिखाने वाला तैयार है परन्तु वह स्त्री है और तुम्हें उन के बंगले पर रोज जाना पड़ेगा'। उस दिन तो यह बात हँसी में यहीं तक रह

गई परन्तु दूसरे दिन सब बातें ठीक हो गईं और पण्डित जी रोज फ़्रेञ्च पढ़ने जाने लगे। इस नवीन प्रसंग के कारण पण्डित जी की उदासी भी कुछ कम हो गई। इस के बाद तत्कालीन वाइसराय लार्ड डफरिन से भी उन की दो तीन बार भेंट हो गई जिस से उन के मन का बोझ कुछ और हलका हो गया। शिमला से लौटने पर आप ने मुझे शिमला-यात्रा का वर्णन लिखने के लिए कहा परन्तु मुझे कुछ लिखना तो आता ही न था। इस से मुझे भय था कि मेरे लेख पर टीका टिप्पणी और हंसी ही होगी इसलिए मैं ने कुछ भी न लिखा। एक बार पण्डित जी को सुना कर आपने मुझ से कहा भी था—'अपनी शिमला-यात्रा में फ्रेञ्च सिखाने वाली मेम का कुछ हाल न लिख देना।'

चार मास बाद कमेटी मदरास गई, इस कारण मदरास जाने के लिए हम लोगों को पूना लौट आना पड़ा। शिमला जाते समय हम लोग मार्ग के प्रसिद्ध तीर्थ तथा नगर आदि न देख सके थे। लौटते समय हम लोग हरिद्वार आये। उस समय हरिद्वार तक रेल न थी। तेरह चौदह कोस हम लोगों को तांगे पर जाना पड़ा। उस दिन श्रावण का सोमवार था। दिन भर वहां रह कर, सन्ध्या समय हम सब लोग कनखल, गंगोत्री, तथा

वद्री केदार आदि जाने के मार्ग देखने गये, और लौट कर रात की गाड़ी से लाहौर चले गये।

सवेरे लाहौर में, हम लोगों को वहां उतारने और ठहराने के लिए आप के कुछ मित्र मिले। उसी दिन सन्ध्या समय उन लोगो के आग्रह से वहां आपका एक व्याख्यान हुआ। कुछ पंजाबी स्त्रियां मुझे वहां का सार्वजनिक वाग और किला वग़ैरह दिखा लाईं। दूसरे दिन कुछ स्त्रियो के आग्रह से मैं उन लोगों के घर भी गई। मित्र मण्डली में आप को भी पान सुपारी का निमन्त्रण दिया गया। वहां का प्रसिद्ध लकड़ी और चांदी की नक़्क़ाशी का काम और रेशमी तथा कलाबत्तू के कसीदे देखे। रात की गाड़ी से चल कर दूसरे दिन हम लोग अमृतसर पहुंचे। वहां बहुत सख़ गर्मी पड़ती थी। मज़दूरों के सिरों पर बोझ और हाथो में पखे दिखाई दिये। वहा के मित्रो ने हम लोगों को एक सराय में ठहराया। वहां सब प्रकार का सामान पहले से ही तैयार था। मेरे लिए भी परदा डाल कर एक कोठरी सी बना दी गई थी जिस में एक दासी पंखा हांकने के लिए रख दी गई थी, परन्तु पुरुषों के भोजनादि का विना कुछ प्रबन्ध किये, स्वयं पंखे की ठण्डी हवा खाना हम हिन्दू स्त्रियो को पसन्द नही, इसलिए मै ने।) दे

कर उस दासी को विदा किया, और स्वयं भोजन के प्रबन्ध में लगी, परन्तु गरमी की अधिकता के कारण, इतने ही समय में मुझे चार बार स्नान करना पड़ा। स्त्रियों के स्नानगृह में मुझे धोती पहने स्नान करते देख दो तीन स्त्रियां हँसी; क्योंकि उन लोगों में न्हाते समय कपड़े उतार देने की चाल है परन्तु मैं ने उस ओर कुछ ध्यान न दिया तो भी उन की इस प्रथा से मुझे बहुत लज्जा मालूम हुई।

तीसरे पहर कुछ सिक्ख स्त्रियों के साथ मैं वहां का प्रसिद्ध स्वर्ण मन्दिर देखने गई। इस के बाद विशेष आग्रह के कारण मैं उन के घर भी गई। उन्हों ने हुक्का, शरबत, पान सुपारी आदि मेरे सामने ला रखे। परन्तु दक्षिणी स्त्रियां तो पान तक नहीं खातीं, ये सब चीजें तो दूर रहीं। उसी रात को वहां से चल कर दूसरे दिन हम लोग दिल्ली पहुंचे। दिल्ली में भी हम लोग सराय में हीं ठहरे। सराय में बंगालियों की यात्रा-मण्डली की यात्रा (लीला) हो रही थी। उसमें अधिकांश स्त्रिया ही थीं। दिल्ली की प्रसिद्ध इमारतें देख कर हम लोग आगरे आये। वहां से मथुरा, वृन्दावन और गोकुल गये। वहां से चल कर हम लोग अजमेर आये। यहां से छः सात मील पर पुष्कर नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। वहां कमल बहुत

अधिक होते हैं। और भोजन के लिए, केलों के पत्तों के समान उनका भी उपयोग होता है। आप की तबीअत अच्छी न होने कारण, आज्ञानुसार मैं जानकी बाई तथा पणहा को ले कर पुष्कर गई। पास ही थोड़ी दूर पर सावित्री का एक मन्दिर था, परन्तु आप की तबीअत खराब होने के कारण, मैं वहा न जा सकी, और घर लौट आई। अजमेर से हम लोग सिद्धपुर गये। यहीं सरस्वती नदी और कपिल मुनि का मन्दिर है। हम हिन्दुओं के लिए यह स्थान बहुत पूज्य है। इस क्षेत्र को मातृगया कहते हैं। यहाँ से हम लोग अहमदाबाद आये। यहा आप की तबीअत और खराब हो गई। भावनगर और काठियावाड़ जाने का विचार इसीलिये छोड़ दिया गया। और हम लोग सीधे पूना आये। उसी दिन मेरे पिता जी की मृत्यु का दुःखजनक समाचार मिला। आपकी अस्वस्थता के कारण, मेरे १५ दिन बहुत कष्ट में बीते। इस के बाद आप की तबीअत कुछ ठहर जाने पर हम लोग मदरास गये।

---

[१६]

कलकत्ते की यात्रा।

एक मास मदरास में रह कर, दशहरे के बाद हम लोग पूना लौट आये और वहा ८—१० दिन रह कर

कलकत्ते चले। रास्ते में भुसावल और जबलपुर आदि स्थान देखे। वहां से चल कर प्रयाग आये। प्रयाग में त्रिवेणी का जल अन्य तीर्थ स्थानों में चढ़ाने के लिए भर लिया। काशी में हम लोगों ने भागीरथी स्नान, विश्वेश्वर, मंगला गौरी, कालभैरव आदि के दर्शन किये। दूसरे दिन हम लोग कलकत्ता गये। वहां धर्मतल्ला पर एक बड़ा बंगला किराये पर लिया। परन्तु उस में वृक्ष आदि कुछ भी नहीं थे, इसलिए वह उजाड़ सा मालूम होता था। सन्ध्या समय मैं ने आप से बंगले की उदासीनता की शिकायत की। सब कुछ सुन चुकने पर आप ने शान्त हो कर कहा—'बाग बगीचों और पेड़ों से भी कहीं मनोरंजन होता है। जिस के पास वाचन के जैसा साधन है, उसे इन सब बातों की चिन्ता न करनी चाहिए। वाचन के समान आनन्द और समाधान देने वाली और कोई चीज नहीं है। एक विषय की पुस्तक से तबीअत उकताई तो दूसरी पुस्तक उठाली। कविता छोड़ कर गद्य पढ़ने लगे। यदि अधिक पढ़ने से जी उकताया तो ईश्वर निर्मित बाग बगीचे देखने चले गये। तुम्हारे पास तो सभी साधन हैं। गाड़ी कसवा कर हवा खाने जाने से थके हुए मन को विश्राम मिलता है। मनुष्य-निर्मित बाग बगीचे से यदि चित्त आनन्दित

और प्रफुल्लित होता है, तो ईश्वर-निर्मित सृष्टि-सौन्दर्य का मनन करने और इस के द्वारा प्राणिमात्र को मिलने वाले सुख का विचार करने से अन्तःकरण को सद्गति प्राप्त होती है। अता साहब की मृत्यु के कारण तुम्हारा मन उदास है, इसलिये तुम्हारा मनोविनोद किसी प्रकार नहीं हो सकता। अच्छा, अब हम एक काम तुम्हारे सुपुर्द करते हैं। कल से तुम इस उजाड़ जगह को शोभापूर्ण बनाने का विचार ठानो। यह सुन कर मुझे हँसी आई, मैं ने कहा—'केवल विचार ठानने से यहां की शोभा किस प्रकार बढ़ेगी।' आप ने कहा—'कल सवेरे चार मज़दूर बुलवा कर बाग के लिए थोड़ी सी जगह साफ करा लो। और कुछ तरकारियां और ऋतु के फूलों के बीज मंगा कर बो दो। इस से उपयोग और मन-बहलाव दोनों होगा। जब तुम बाग में पानी दोगी तो अनायास व्यायाम भी हो जायगा। सन्ध्या समय तुम्हारी पढ़ाई इसी बाग में हुआ करेगी।' दूसरे दिन सवेरे ही आपने मुझे वह बात फिर याद दिलाई। मैंने भी मजदूर बुला कर सन्ध्या तक सब काम ठीक करा लिया। बीज वगैरह भी मंगा कर बो दिये गये और सन्ध्या समय पढ़ने के लिए हम लोगों की कुरसियां वहीं बिछने लगी। एक दिन एक बंगला समाचारपत्र

बेचने वाले ने आ कर पूछा—'पत्र लीजियेगा ?' मैं ने जल्दी से कहा—'हमें बंगला पत्र नहीं चाहिए। बंगला जानते ही नहीं, इसलिए व्यर्थ पत्र क्यों लें ?' मेरी बात पर ध्यान न दे कर उसने आपसे पूछा। आपने उत्तर दिया—'आज का पत्र दे जाओ। कल से मत लाना। इसके बाद सोमवार को पत्र ले आना। उसी दिन से लेना आरम्भ कर देंगे।' उसके चले जाने पर आपने मुझ से कहा—'जिस स्थान पर दो चार महीने रहना हो, वहां की भाषा न जानने की बात कहने में मुझे तो संकोच मालूम होता।' मैंने कहा—'किसी दूसरी भाषा न जानने की बात कहने में संकोच काहेका ? यदि उस के सीखने की इच्छा भी हो तो वह क्यों कर पूर्ण हो सकती है ? और यहां सिखलाने वाला ही कौन है ?'

मुझे भली भांति मालूम था कि आप बंगला अक्षर मात्र पहिचानते हैं, अच्छी तरह पढ़ नहीं सकते। मैं ने फिर कहा—'अच्छा मैं तैयार हूं। कल से आप ही मुझे सिखलावें। परन्तु आप के अतिरिक्त किसी दूसरे से मैं न सीखूंगी। आप मौन होकर कुछ विचार करते रहे, बोले नहीं॥

दूसरे दिन जब आप टहल कर वापिस आये, तो साथ में एक सिपाही भी था, जिसके हाथ में दस पंदरह किताबें

थीं। मैंने दो एक पुस्तकें खोल कर देखीं, तो मालूम हुआ कि वे बंगला और अंगरेजी की हैं। आपने कहा—'पुस्तकें सहेज कर बिल का दाम चुकता कर दो।' मैंने तुरन्त दाम दे दिये। दूध पीने के बाद आप एक पुस्तक उठा कर देखने लगे। स्वयं ही जाकर पुस्तकें खरीदने का प्रयोजन मेरी समझ में न आया। सारे जीवन में आप के लिए बाजार से चीजें खरीदने का यह पहला ही अवसर था। नियमानुसार आप न कभी पैसे छूते और न अपने पास रखते थे। ११ बजे तक आप पुस्तक पढ़ते ही रहे। स्नान कर, भोजन करने जाते समय सिपाही से बाजार से स्लेट पेन्सिल तुरन्त लाने के लिए कहते गये। भोजनोपरान्त आप ने स्लेट पर कुछ अक्षर लिखे। आज अपने नियम के विरुद्ध आप ने किसी प्रकार का हँसी मजाक भी न किया। सारा लक्ष्य इसी नई पढ़ाई की ओर था। दिन भर इसी प्रकार बीता सन्ध्या समय एक बार आपने कहा—'आज बंगला पढ़ने में ही सारा दिन बीतने के कारण रोज का कोई काम नहीं हो सका।' मैं ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मन में मुझे इस का बहुत दुःख हुआ कि मेरी कल की बात के कारण ही, आज आप को इतना परिश्रम करना करना पड़ा। पहले दिन मैं ने जो कुछ कहा था, वह केवल बात टाल देने के

लिए ही था। दूसरे दिन सवेरे आप ने सब अक्षर मुझे बतलाये, और मैं ने उन का अभ्यास किया।

दोपहर को आप एक बंगला पुस्तक हाथ में लेकर हजामत बनवाने बैठे। पुस्तक पढ़ते पढ़ते आप जब रुकते तो आप अक्षर और उच्चारण उस हज्जाम से पूछते। मैं आड़ में थी मैंने समझा कि कोई मिलने आया है। परन्तु सामने आकर देखा कि आप पुस्तक पढ़ रहे हैं और हज्जाम शब्दों का उच्चारण और अर्थ बतलाता है। मुझ से हंसी न रुकी। उसके चले जाने पर मैंने कहा—'मास्टर तो बहुत अच्छा मिला। श्री दत्तात्रेय ने जिस प्रकार चौबीस गुरु किये थे, उसी प्रकार यदि मुझ से आप के गुरुओ की सूची बनाने के लिए कहा जाय, तो मैं इस हज्जाम का नाम सबसे ऊपर रखूंगी। पहले तो शिष्य गुरु की सेवा करते थे और अब उलटे बिचारे गुरुको शिष्य की सेवा करनी पड़ती है।'

इस प्रकार आपने मुझे बंगला की शिक्षा दी। बहुत बड़े बड़े कामों के होते हुए भी; मुझे बंगला सिखाने के लिए इतना परिश्रम किया। महीने डेढ़ महीने में मुझे बंगला पढ़ना आगया। अब हम लोग बंगला समाचार-पत्र भी पढ़ने लगे। पुस्तकों की पढ़ाई भी साथ ही साथ हो रही थी। कलकत्ते से चलते समय हम लोगों ने

विषवृक्ष, दुर्गेशनन्दिनी, आनन्दमठ आदि कई उपन्यास भी ले लिए थे।

---

[१७]

करमाल की बीमारी

सन् १८८८ में कलकत्ते से लौट आने पर, कृषि विभाग के स्पेशल जज डा० पोलन की जगह पर आपकी नियुक्ति हुई। पूना, सितारा, नगर और शोलापुर इन चार जिलों में दौरा करने के कारण आठों महीने प्रवास में ही बीतते थे। जनवरी सन्१८९१ में हम लोग नगर आये। वहा से शोलापुर लौटने में डेढ़ महीना लगा। उस साल २६ फरवरी को मनुष्य-गणना थी। विचार था कि आफिस के लोगो को करमाल में छोड़ दो दिन के लिए पूना हो आवें, इसलिए उस दिन रात तक काम करना पड़ा। भोजन में भी विलम्ब होगया और पढ़ाई भी न हुई।

दूसरे दिन २६ फरवरी को सवेरे कोको पीकर आप टहलने गये। इस बार चिरंजीव मनू भी साथ ही थी; उस समय वह केवल १० मास की थी। जब आप टहल कर आये, तो तबीअत कुछ अस्वस्थ मालूम हुई। तो भी मै पढ़ने के लिए बैठ गई। उस समय मै मेडोज टेलर (Meadow's Taylor) की तारा नाम की पुस्तक पढ़ती

थी। उस दिन के पाठ में तारा की-वैधव्यस्थिति और उस के माता पिता की विह्वलता का प्रकरण था। उसे पढ़ कर हम लोग बहुत दुःखित हुए। यहां तक कि अन्त में पुस्तक बन्द कर देनी पड़ी। इस पर आप विधवाओं की अत्यन्त दुःखद और शोचनीय दशा का वर्णन कर चले। इस सम्बन्ध में हमारे समाज में जो निर्दयतापूर्ण और घातक प्रणालियां हैं, और उन से समाज का जो अहित हो रहा है, उसका शोचनीय वर्णन आप ने बहुत गम्भीरता पूर्वक किया। थोड़ी देर बाद आपने फिर पेट में दर्द होने की शिकायत की। मैंने पुदीने का अर्क, सोंठ आदि दो तीन दवाएं ला कर खिलाईं। थोड़ी देर बाद रबड़ की थैली में गरम पानी भर कर मैंने सेकना आरम्भ किया परन्तु उसका विशेष फल न देख कर मैंने डाक्टर को बुलवाया। उन्होंने भी दवा देकर, सेक जारी रखने के लिए कहा। उनके कहने के अनुसार दवा दी गई, और सेक होता रहा। मेरे अतिरिक्त घर का और कोई आदमी पास में नहीं था। आप के आफिस के लोग आप को बहुत भक्ति और आदर की दृष्टि से देखते थे, इसलिए वे लोग पास ही खड़े रहे।

सब प्रकार औषधोपचार होने पर भी बीमारी न

घटी। चार चार पांच पांच मिनट पर कै होने लगी। सन्ध्या के तीन चार बज गये तो भी आफिस के लोगों ने स्नान या भोजन नहीं किया। इस घबराहट में मुझे सखू का भी ध्यान न रहा। सरिश्तेदार ने उसे बाहर ही अपने पास रक्खा। सुबह से डाक्टर भी वहीं बैठे हुए थे तीन बजे वह भोजन करने गये। जाते समय वह कह गये—'सन्ध्या को मैं एक बार फिर देख जाऊंगा। रात को आठ बजे के बाद मैं न आ सकूंगा क्योंकि मेरी नियुक्ति मनुष्य-गणना में हुई है।' मुझे बहुत चिन्ता हुई। मैंने सरिश्तेदार को भेज कर मनुष्य-गणना के अधिकारी मामलेदार को कहला दिया—'आज आप कृपा कर डाक्टर साहब को हमारे यहां ही रहने दें। उन के स्थान पर मनुष्य-गणना का काम करने के लिए हम अपने आफिस के दो कर्म्मचारी भेज देंगे।'

इधर आप की तबीअत और भी खराब हो गई। पसीना बहुत अधिक आने लगा। उंगलियां और नाखून काले पड़ गये। इतने में डाक्टर आये। मैं ने उन से कहा—'मैं पूना के डा० विश्राम जी को तार देती हूं। सुबह जब तक वह न आवें तब तक आप कृपा कर यहीं रहें। आप के बदले मनुष्य-गणना का काम करने के लिए दो आदमी चले जायंगे'। इधर मैं ने ननद और डाक्टर

विश्राम जी को तार लिखा। स्टेशन वहां से तेरह मील था। मैं ने तार दे कर एक आदमी को घोड़ा गाड़ी पर स्टेशन भेजा और उस से कह दिया कि सुबह चार बजे की गाड़ी में ननद और विश्राम जी आवेंगे उन्हें इसी गाड़ी पर ले आना।

बीमारी दम पर दम बढ़ती गई। दिन में कई बार आप ने मुझे ढाढ़स दिया था परन्तु अब आप की आवाज बन्द हो गई। मैं बहुत घबड़ा गई। मन ही मन सोचने लगी। पृथ्वी और आकाश के अतिरिक्त इस समय मेरा कोई भी नहीं है। वह सर्वशक्तिमान् दयालु ईश्वर कहां है? मेरा विश्वास आज तक उसी पर रहा है। क्या वह नहीं समझता है कि इस समय उस के अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है। मैं उठ कर अन्दर मन्दिर में महादेव की मूर्त्ति के पास जा बैठी।

उस समय रात के तीन बजे थे। दीपक मन्द मन्द जल रहा था। मैं भी यही चाहती थी कि उस समय मेरे और देवता के अतिरिक्त वहां और कोई न रहे। मेरे मुंह से एक भी शब्द न निकला। मैं माथा टेक कर रोने लगी। रोने पर जब मन का बोझ कुछ हलका हुआ तो मैं ने कुछ प्रार्थना भी की। अन्त में मैं ने कहा—'हम दीन इस सङ्कट में तुम्हारे द्वार पर आ पड़े हैं।

तुम जैसे चाहो वैसे हमारा उद्धार करो'। न जाने क्यों वहीं मेरी आंख लग गई। मैं ने स्वप्न देखा—पहाड़ पर देवस्थान के निकट एक बड़े वटवृक्ष की डाल पकड़ कर मैं झुक कर नीचे नदी में न्हाते हुए असंख्य स्त्री पुरुषों को देख रही हूं। धीरे धीरे वह वृक्ष नीचे की ओर झुकने लगा; नीचे के लोगों के दब जाने के भय से मैं चिल्ला कर लोगों को हटने और उस वृक्ष को सहारा देने के लिए कहने लगी। इतने में बहुत से आदमियों ने ऊपर आ कर उस वृक्ष को संभाल लिया। इतने ही में सरिश्तेदार ने आ कर मुझे आवाज दी। मै घबड़ा कर उठ बैठी। मालूम हुआ आप बुलाते हैं। मैं नीचे उतर आई। आप कै किया चाहते थे। डाक्टर तथा मैं ने आप को उठा कर बैठाया। बहुत जोर से कै हुई। उस समय पसीना बन्द हो गया था। डाक्टर के परामर्श से मैं ने तुलसी के रस में हेमगर्भ की मात्रा दी। उसी समय फिर बीमारी ने जोर पकड़ा। आप ने कहा 'अब हमारी खैरियत नहीं। कहां पूना और कहां हम ! तुम बिलकुल अकेली हो'। फिर कहा—'डरो मत। तुम्हारा ईश्वर है। तार दे कर दुर्गा को बुलाओ'।

मैंने हेमगर्भ की एक मात्रा और चटाई और कहा—'डाक्टर साहब कहते है, अब तबीयत अच्छी है। धैर्य

रक्खें। तार भेज दिया है। डा० विश्राम जी और ननद आती ही होंगीं।' इस समय सुबह के पांच बजे थे। एक नाड़ी डाक्टर के हाथ में थी और दूसरी मेरे हाथ में थी। मेरा चित्त ठिकाने नहीं था, इसलिए नाड़ी की गति मेरी समझ में नहीं आती थी। पाच सात मिनट बाद मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मानो नाड़ी बन्द हो गई। मैं चिल्ला कर रोने को ही थी कि डाक्टर ने मेरी दशा समझ कर कहा—'डरो मत, नींद आ गई है। यदि नींद टूट जायगी तो ठीक न होगा।' इतने में मैं ने भी सोने में आप के श्वास चलने की आवाज सुनी और मेरा मन स्थिर हुआ।

बीस मिनट तक अच्छी नींद आई। नाड़ी भी जल्दी जल्दी और ज़ोर से चलने लगी। सात बजे डा० विश्राम जी की गाड़ी आई। उस में ननद को देख कर मुझे कुछ धैर्य हुआ। यद्यपि डा० विश्राम जी मराठे थे, तो भी उस समय जाति का ध्यान न करके मैंने अपना सिर उन के पैरों पर रख दिया और कहा—'अब तक इन डाक्टर साहब ने कृपा कर तबीअत संभाली है, अब आप सँभालें। मुझे विश्वास है कि आप इस समय देवता होकर मेरी सहायता के लिए आये हैं।'

विश्राम जी ने नाड़ी देखी। इस के बाद उन्होंने

डाक्टर को अलग ले जाकर तबीअत और दवा का सब हाल पूछा। थोड़ी देर बाद जब आपकी आंख खुलीं तो आपने विश्राम जी तथा ननद को देख कर कहा—'तुम लोग आ गये ? हमारी क्या हालत है ? इतने में दुर्बलता के कारण मूर्च्छा आ गई। चैतन्य होने पर विश्राम जी ने कहा—'अब डरने की कोई बात नहीं है। वास्तविक कष्ट कल ही था वह अब टल गया'। इस के बाद विश्रामजी ने एक गिलास में कुछ दवा और थोड़ा जल मिला कर पीने को दिया। गिलास मुंह के पास लेजाकर आप ने फिर हटा दिया और कहा—'हमारा नियम भंग न करो। इस के सिवाय और जो दवा दोगे वह मैं पी लूंगा'।

डा० विश्राम जी ने बहुत कुछ समझा कर कहा—'मैं निरुपाय होकर ही इस का उपयोग करता हूं। मूर्च्छा के लिए दो दो घण्टे पर बीस से तीस बून्द तक यह देना आवश्यक है। पूना चल कर दूसरी औषध का प्रबन्ध हो जायगा'। आप ने 'राम,राम' कह कर बड़े कष्ट से वह दवा पीली।

दूसरे दिन हम लोग वहां से चल कर जेजुर स्टेशन पर आये। वहां पहले से ही आप के बहुत से मित्र पूना से आ गये थे। उन के साथ संध्या को हम लोग पूना

पहुंचे। वहां आप की बीमारी का समाचार पहिले ही पहुंच चुका था इसलिए सब को बहुत चिन्ता थी। दुर्बलता के कारण मूर्च्छा बहुत अधिक आती थी इसलिए विश्राम जी ने लोगों से मिलने की एकदम मनाही करदी थी। आपके पास कोई जाने न पाया ।

इस बीमारी से अच्छे होने और काम पर जाने में, दो मास लगे थे।

---

[१८]

मिशन की चाय।

१४ अक्तूबर सन् १८९७ को सन्ध्या समय सेंट मेरीज़ कानवेण्ट में कुछ समारम्भ था। उस में मिशनरियों ने शहर के ६०-७० प्रतिष्ठित सज्जनों को निमन्त्रण दिया था। स्त्री पुरुष सब मिलाकर इन लोग कोई १०० आदमी थे। कुछ लोगों ने निबन्ध पढ़े और कुछ लोगो ने वक्तृताएँ दीं। तदुपरान्त ज़नाना मिशन की कुछ सिस्टर्स ने अपने हाथों से लोगों को चाय दी। कुछ लोगों ने तो वह चाय पी ली और कुछ लोगों ने केवल उनका मान रखने के लिए प्याले हाथ में लेकर अलग रख दिये। हम दस बारह स्त्रियों ने चाय लेना अस्वीकार कर दिया।

इस के दो तीन दिन बाद, 'पूना वैभव' में गोपाल विनायक जोशी के नाम से उस दिन की दानवेदट की सब कार्रवाई प्रकाशित हुई। उस के अन्त में सम्पादक ने असल बात को छोड़ कर, इधर उधर की बातों पर व्यक्तिगत टीका की और कहा कि—'इन राव साहब तथा राव बहादुर सुधारकों के ये कृत्य पूना के सनातन-धर्म्मियों को किस प्रकार अच्छे मालूम होते हैं? जब इन लोगों के घरों में ब्राह्मणों को साल में बड़ी बड़ी दक्षिणाओं सहित दस पांच निमन्त्रण मिलते हैं, तब भला यह भिक्षुक-मण्डली इन बातों का नाम ही क्यों ले? यदि गोपालराव जोशी के समान कोई निर्धन अमेरिका या विलायत हो आवे, तो ये लोग उस के पीछे पड़ जायंगे। उस को पंक्ति में बैठाने का नाम लेते ही पाप लग जायगा। प्रायश्चित्त करा कर भी उसका पिण्ड छोड़ना स्वीकार न करेंगे। उसे दूर से पानी पिलाने या उस से बोलने तक को धर्म्मविरुद्ध बतलाने वाली ब्राह्मण-मण्डली के खुशामदी हो जाने के कारण ही यह सुधारक आसमान पर चढ़ गये हैं।' इत्यादि।

इसी अवसर पर हमारे यहां एक भोज हुआ। जिस में ४०—५० सज्जन निमन्त्रित थे। दो तीन को छोड़ कर शेष सभी ब्राह्मण थे। उस दिन गोपालराव जोशी भी

आये हुए थे । उन्हों ने दूसरे ही दिन 'पूना वैभव' में हमारे यहाँ का कुल हाल ब्यौरेवार छपवा दिया परन्तु इस में उन का उद्देश्य मन-बहलाव और तमाशा देखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था । उन के लिए सनातन-धर्म्मी और सुधारक दोनों ही बराबर थे ।

इस पर बड़ा आन्दोलन हुआ । श्रीशंकराचार्य्य जी तक भी यह समाचार पहुंचाये गये । सब लोगों ने एक सभा करके निश्चित किया कि यदि 'पूना वैभव' में छपी हुई बातों का अभियुक्त लोग खण्डन या विरोध न करें, तो उन्हें जाति-बहिष्कृत किया जाय । दो सप्ताह तक, हमारी ओर से खण्डन का आसरा देख कर, अन्त में उन लोगों ने एक सभा कर के बावन में से बयालीस आद-मियों को मिशनरियों के हाथ की चाय पीने के अपराध में बहिष्कृत कर दिया। शेष दस आदमियों ने खेद प्रकट करते हुए पत्र लिख दिया था कि हम लोगों ने प्याले अवश्य लिए परन्तु चाय नहीं पी; इसलिए उनका छुट-कारा हो गया ।

इसके बाद श्रीशंकराचार्य्य जी ने एक शास्त्री पंडित को इस झगड़े के निर्णय करने के लिए पूना भेजा । उन्हों ने अभियुक्तों को अपने पक्ष में कहने और अपने निर्दोष होने के प्रमाण देने की आज्ञा दी। उसमें अभि-

युक्तों की ओर से श्रीयुत बालगङ्गाधर तिलक और रघुनाथदाजी नगरकर वकील बने। वादियों की ओर से नारायण बापूजी कानिटकर थे। इस प्रकार यह विचार आरम्भ हुआ।

एक दिन ननद (दुर्गा) ने आपसे पूछा—'जिस प्रकार उन दस आदमियों ने पत्र लिख कर छुटकारा पाया है, उसी प्रकार आप भी क्यों नहीं लिख देते? आपने भी तो प्याला हाथ में ले कर जमीन पर रख दिया था। सत्य बात लिख देने में क्या हानि है? व्यर्थ लोगों से दोष और अपवाद लेने से क्या लाभ?' इस पर आपने कहा—'पागल हुई हो, यह क्योंकर हो सकता है? जब मैं उस मण्डली में मिला हुआ हूं, तो जो काम उन्होंने किया वही मैंने भी किया। मैं नहीं समझता कि चाय पीने या न पीने में भी कुछ पाप पुण्य लगा है परन्तु जिस में हमारे साथ उठने बैठने वाले चार आदमी फंसे हैं, उनसे अलग हो जाना मैं कभी पसन्द नहीं करता।' इस पर ननद ने कहा—'आपको तो कुछ नहीं, परन्तु हमें बात बात पर अड़चन होगी। श्राद्धपक्ष में ब्राह्मणों के मिलने में भी कठिनता होगी।' आपने कहा—'इस की चिन्ता तुम न करो। बिना सब ऊंच नीच सोचे मनुष्य किसी काम में प्रवृत्त नहीं होता। तुम्हें जितने

ब्राह्मणों की जरूरत होगी, उतनों का प्रबन्ध हो जायगा। यद्यपि इससे खर्च बहुत पड़ेगा, तो भी और कोई उपाय नहीं है।'

अब आप को इस के प्रबन्ध की चिन्ता लगी। क्योंकि घर के लोगों को, विशेषतः बड़ी स्त्रियों को किसी प्रकार असन्तुष्ट रखना आपको पसन्द नहीं था। आपका सिद्धान्त था कि घर के लोगों को असन्तुष्ट रखने में, गृहस्थी चलानेवाले की हेठी है।

उन दिनों चार ब्राह्मण हमारे यहां नियमित रूप से रहते थे; १००) वार्षिक पर दो ब्राह्मण और भी रख लिए गये जिस में हम लोगों तथा अपने मेल के और लोगों को ब्राह्मण मिलने की अड़चन न रहे। और लोगों के यहा जब कभी होम, व्रत, या अन्य संस्कारों में आवश्यकता पड़ती, तो ये ब्राह्मण वहा जाकर सब कृत्य करा आते। इस प्रकार दो बरसों तक हमारे यहां के इन ब्राह्मणों से बहुत से लोगों का काम चला और घर के लोगों को भी कुछ कहने सुनने की जगह न रही।

कुछ दिन बाद बयालीस में से कुछ लोग कहने लगे 'पुरुषों की अपेक्षा, घर की स्त्रियों को इन झगड़ों से विशेष कष्ट पहुंच रहा है। वे कहती हैं कि जिन लोगों ने चाय पी वे तो अलग होगये, और आफत हमारी

लड़कियों के सिर आई। आज दो बरस से इसी झगड़े के कारण हमारी लड़कियां ससुराल से अपने घर नहीं आने पाती। उन के रोज के सन्देसो से स्त्रियों को और भी दु:ख हो रहा है। कुछ समझ में नही आता कि क्या करें।' इसी प्रकार की बातें सुनते सुनते, आप भी विचार में पड़ गये। उसी अवसर पर सन् १८९९ के मई मास में, आपके एक मित्र, जिनका परिवार बहुत बड़ा था, और जिन्होंने चाय का प्रायश्चित्त नही किया था, बाहर से अपने घर पूना आये। उन्हीं दिनों उन के यहां दो एक विवाह होने को थे। उनके पिता ने उन्हें समझाया कि श्रीशंकराचार्य्य जी के फैसले से पूर्व ही तुम प्रायश्चित्त कर के हम लोगो में आ मिलो। परन्तु उन्होने मन में समझा कि—'हमने कोई पाप तो किया ही नही है; इसलिए केवल विवाह में सम्मिलित होने और चार आदमियो को खुश करने के लिए प्रायश्चित्त करना ठीक नहीं है।' इस विषय पर उन्होने आप से सम्मति पूछी। आपने कहा—'तुम अपने बाल बच्चों को लेकर छुट्टी के दिनो तक हमारे पास लुनौली में आ रहो, तो इन सब झगड़ों से बच जाओगे।' उन्होने भी वैसा ही किया। हम लोग महीने डेढ़ महीने तक एक साथ रहे। परन्तु उन के पिताजी को इससे बहुत चिन्ता

हुईं, और वे उन्हें बार बार पत्र लिख कर प्रायश्चित्त करने की सलाह देते रहे। उन्होंने आप से राय पूछी तो आपने कहा—'यदि तुम्हारे स्थान पर मैं होता तो सब प्रकार की मानहानि सह कर भी पिता जी को सन्तुष्ट करता।' इस पर उन्होंने कहा—'यदि हमारे साथ आप भी प्रायश्चित्त कर लेते तो ठीक होता।' इस के बाद पूना से भी दस पन्द्रह आदमी आगये। उन्होंने भी बहुत सोच विचार कर आपसे कहा—'हम लोगों के छुटकारे के लिए आप भी प्रायश्चित्त करलें।' आपने कहा 'ख़ैर, तो हम भी प्रायश्चित्त कर लेंगे। मेरी कोई ज़िद नहीं है। तुम लोग पूना जाकर दिन ठीक करो, और मुझे सूचना दो। मैं भी एक दिन के लिए चला आऊंगा।'

वे लोग पूना लौट गये और वहां जाकर उन्हों ने निश्चित दिन की सूचना दी। उसी दिन सवेरे पांच बजे की गाड़ी से आप अपने मित्र सहित पूना चले गये।

मुझे इस बात का बहुत दुःख हुआ। मैं बिछौने पर पड़ी पड़ी इस विषय पर विचार करने लगी। मन को बहुत समझाया पर वह किसी प्रकार शान्त न हुआ। जिन का काम रुका हो वे तो प्रायश्चित्त करलें परन्तु आप क्यों व्यर्थ प्रायश्चित्त करें। आपके सरल स्वभाव से लाभ उठानेवाले वे लोग मन में क्या कहेंगे?

इस विषय में लोगों की बात मान कर क्या आपने अच्छा किया ? इन पूनावालों के लिए सब कुछ करने और बदनामी उठाने की तो आपकी आदत ही है। इन्हीं सब विचारों में मेरा वह सारा दिन बड़ी उदासी से बीता।

सन्ध्या की गाड़ी से आप लौट आये, परन्तु मुझे आप के सामने जाने का साहस न हुआ। क्योंकि मैं समझती थी कि आज के कृत्य से आप भी दुःखी होंगे इसलिए मैं ने सामने न जाना ही उचित समझा। परन्तु आड़ से देखने से मालूम हुआ कि आप नियमानुसार बड़ी शान्ति पूर्वक डाक तथा अखबार देख रहे हैं। मुझे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि आप किसी प्रकार उद्विग्न या चिन्तित न दिखाई दिये। भोजनादि भी बड़ी प्रसन्नता से हुआ। यह देख मेरा आश्चर्य और भी बढ़ गया। मैं ने समझा—मन में तो कुछ दुःख अवश्य ही होगा। उसे दबा कर इस प्रकार बिना अन्तर पड़े क्यों कर नित्य कार्य्य कर रहे हैं ? मैं ने मन में सोच रखा था कि आज घर आने पर अमुक अमुक बातें पूछूंगी, परन्तु वे सब मन की मन ही में रह गईं। मुंह से एक शब्द भी न निकला। रात बीत गई, सवेरा हुआ। तो भी उस विषय में कोई बात चीत न हुई। दूसरे

दिन दो तीन मित्र मिलने आये । उन से प्रायश्चित्त सम्बन्धी बातें हुईं, परन्तु उन में कोई विशेषतः नहीं थी। वे लोग भी आप के इस कृत्य से अप्रसन्न थे, इसलिए आप उल्टे उन्हें समझाने और शान्त करने लगे। तीसरे दिन आप के दो एक मित्रों ने अपने हस्ताक्षर से टाइम्स में दो एक लेख भी छपवाये जिन में इस प्रायश्चित्त पर कड़ी टीका की गई थी। आप ने उन लेखों को भी बहुत शान्त हो कर पढ़ लिया, और मुंह से एक शब्द भी न निकाला।

दो एक दिन पीछे मैं नें भी समय पा कर कहा—"यह प्रायश्चित क्यों किया गया ? परसों सवेरे आप के पुराने मित्रों के मुंह से ये बातें सुन कर मुझे बहुत दुःख हुआ। उन की बातों और कहने के ढंग से तो मुझे मालूम होता था कि दूसरे की उन्नति न देख सकने के कारण, वे लोग अपने मन का बुखार निकालने के लिए ही ऐसे अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।' आपने कहा—'दूसरों के साथ हम लोग लोग क्यों नासमझी करें ? वास्तविक उद्देश्य और स्थिति तो हम समझते ही हैं। अपने मित्रों और साथ रहने वालों के लिए यदि थोड़ी बुराई भी सहनी पड़े, तो इस में हानि क्या हुई ?' मैं ने कहा—'वास्तविक उद्देश्य और स्थिति आप

तो अवश्य जानते हैं, परन्तु और लोग उसे क्यों कर समझेंगे? लोग तो और का और ही समझ लेते हैं। परसों ... ... महाशय इस प्रकार क्रोध में भर कर ऐसी बातें कर रहे थे कि मानो आप ने अपने स्वार्थ के लिए ही यह प्रायश्चित्त किया हो। इतने वर्षों तक साथ रहने पर भी जो लोग आप का स्वभाव न पहचान सके, वे अपने आप को आप का मित्र क्यों कर बतलाते है? मित्रता में परस्पर एक दूसरे के मन की योग्यता समझनी चाहिये। जब तक यह न हो, तब तक मित्रता मौखिक ही है।' आप ने कहा—'उन का तो स्वभाव ही वैसा है। क्या वह वास्तविक बात नहीं समझते? परन्तु मनुष्य का स्वभाव ही है, कि वह अभिमान या आवेश में आकर ऐसी बातें कह बैठता है। ऐसे अवसर पर उसे दूसरे पक्ष का विचार नहीं रहता। जब ये लोग जरा शान्त हो कर विचार करेंगे तो वे इस प्रकार जोर से आक्षेप करना छोड़ देंगे। कल तक तुम्ही कैसी घबराई हुई थी?' क्या तुम्हें समझाना आवश्यक न था? पिछले दिनों जो झगड़ा हुआ था, उस से तुम्हारा काम तो नही रुका? तात्पर्य्य यह कि काम सब ठीक तरह से होना चाहिए। तुम भी तो यही समझती हो कि हमारा प्रायश्चित्त करना अनुचित हुआ।

क्या यह विकारवशता नहीं है ? जो अपने मन में जैसा समझेगा वह वैसा कहेगा ही । इस बात का विश्वास रखना चाहिए कि मनुष्य जो काम करता है, वह खूब सोच विचार कर करता है, जल्दी में नहीं करता। पहले अनुभव का ध्यान कर के इस विषय में मन को शान्त रखना चाहिए; व्यर्थ अपने आप को चिन्तित और दुः-खित करने से कोई लाभ नहीं । यह सब सुन कर मुझे बहुत दुःख हुआ कि मैंने बिना सोचे विचारे क्यों दोष दिया ।

जो मित्र लुनौली में आपके पास आ कर रहे थे और जिन्हों ने आप के प्रायश्चित्त करने पर स्वय वैसा करना स्वीकार किया था वह जब प्रायश्चित्त कर के आये तो आप ने हँस कर उन से कहा—'क्यों, क्या हुआ?' उन्हों ने कहा—'मुझे लोगों ने अपने साथ मिला लिया। पिताजी के सच्चे प्रेम और उस के कारण होने वाले सुख का अनु-भव मुझे उसी समय हुआ जिस समय प्रायश्चित्त कर के ब्राह्मणों के आज्ञानुसार मैंने पिताजी को प्रणाम किया तो उस समय उन्हों ने मुझे छाती से लगा कर गद्गद् हो कर कहा—'इतने मनुष्यों में आज तुम ने मेरा मुँख उज्ज्वल किया ।' उस समय उन के नेत्रों से भी जल नि-कल रहा था और मेरे नेत्रों से भी । पिताजी का इस

प्रकार प्रेमपूर्ण व्यवहार या उन के नेत्रों से इस प्रकार अश्रुपात मैं ने पहले कभी नहीं देखा था। प्रायश्चित्त करने के समय तक भी मैं यही समझता रहा कि मैं जो कुछ कर रहा हूं वह ठीक नहीं है परन्तु पिताजी का यह व्यवहार देख कर मैं ने यही समझा कि मैं ने जो कुछ किया वह बहुत अच्छा किया।

---

[१९]

शोलापुर की बीमारी।

सन् १८९३ में जब आप शोलापुर में दौरा करने निकले तो हमारा पहला मुकाम नाढ़ा में हुआ। कुछ लोगों के आग्रह से वहां तीन दिनों तक आप के उद्योग और व्यापार विषयक व्याख्यान भी हुए थे। अन्तिम व्याख्यान के बाद वाली रात को आप के पेट में दर्द हुआ। नियमित औषधिया दी गई और रबड़ की थैली से सेक हुआ परन्तु दर्द में कमी न हुई। सवेरे डाक्टर का इलाज होने लगा। सन्ध्या समय डाक्टर ने चैन पड़ने के लिए नींद की दवा दी। रात को नींद ठीक आई। बुखार भी कुछ उतर गया। दूसरे दिन सवेरे आप ने सरिश्तेदार से सब काग़ज़ात मंगा कर उन पर दस्तखत किये। टाइम्स खोल कर टेलिग्राम भी पढ़े।

यह सब कृत्य नौ बजे तक हुए। इस परिश्रम के कारण दोपहर को १०५।६ डिग्री का बुखार चढ़ आया और सन्ध्या के छः बजे तक बना रहा। इसी बीच में दोपहर को गवर्नर साहब का खरीता आया जिस में आप के हाईकोर्ट के जज की जगह पर नियुक्ति की बात लिखी थी। सरिश्तेदार ने दो तीन बार वह खरीता आप को सुनाना चाहा परन्तु मैं ने इशारे से मना कर २ दिया क्योंकि मुझे भय था कि बुखार में यह आनन्द का समाचार सुन कर कहीं आप के हृदय पर धक्का न पहुंचे।

दूसरे दिन सवेरे तबीअत कुछ अच्छी मालूम हुई तो मैं ने सरिश्तेदार को वह खरीता ला कर सुनाने को कहा। इस नियुक्ति के समाचार का आप पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। बड़ी सरलता से आप ने सरिश्तेदार से कहा—'तो मालूम होता है कि अब हम को शीघ्र ही यहां का कार्य्य समाप्त कर के पूना चला जाना पड़ेगा।' इस पर मुझे आश्चर्य्य भी हुआ और पहले भय पर हँसी भी आई। मैं ने विचारा—'मैं भी बड़ी पागल हूं। दिन रात साथ रहने पर भी मुझे आपके स्वभाव और सद्गुणों का परिचय न मिला और मुझे ऐसा तुच्छ भय हुआ। जिस पर यदि दुःख का पहाड़ आ पड़े तो वह जरा न डगमगाए और यदि सुख का समुद्र उमड़

पड़े तो विशेष हर्ष न हो; केवल पास रह कर सूक्ष्म दृष्टि से देखने वालों को ही सुख और दुःख का थोड़ा बहुत अनुभव हो सके; बाकी के लोग कुछ समझ भी न सकें; उस के स्वभाव के विषय में न जाने क्यों मेरे इस प्रकार पागलों के से विचार हो गये।

दो तीन दिन बाद हम लोगों ने शोलापुर से पूना जाने का विचार किया। दूसरे ही दिन शोलापुर के लोग डेप्यूटेशन ले कर आये और कहने लगे—'नियुक्ति की आज्ञा हमारे शहर में आई है इसलिए पान सुपारी करने का सौभाग्य भी पहले हमारे शहर को ही प्राप्त होना चाहिए। बिना पान सुपारी के हम लोग जाने न देंगे।" पान सुपारी के समय के विषय में उन लोगो ने मुझ से सलाह पूछी परन्तु आप ने कह दिया—'मैं जब तक उठने बैठने या बोलने योग्य न हो लूंगा तब तक पान सुपारी न लूंगा।' किन्तु उन लोगों ने अपना आग्रह न छोड़ा। कहा—"हम लोग बोलने का कष्ट न देंगे। स्टेशन पर रेल चलने के समय हम लोग केवल माला पहनाना चाहते हैं और कुछ नहीं।" और ऐसा ही उन्हों ने किया भी।

दूसरे दिन वे लोग स्टेशन पर आये। वे लोग साथ में फूल-माला और पान से भरी तश्तरिया लाये थे परन्तु

आप को इन बातों की खबर न थी। आप सेकेण्ड क्लास में चुपचाप पड़े हुए थे। गाड़ी चलने से दो मिनट पूर्व सब लोग डब्बे में चले आये और पान सामने रख कर हार पहना दिये। गाड़ी ने सीटी दी सब लोग नीचे उतर गये। नीचे से उन्हों ने आप पर पुष्पवृष्टि की और तीन बार आप के नाम का जयघोष किया।

पूना पहुंचने पर दुर्बलता के कारण आप को ८-१० दिन तक घर में पड़े रहना पड़ा। तो भी सवेरे सन्ध्या हमारे यहां मित्रों की भीड़ लगी रहती। सब लोग चलते समय आप के सम्मान करने की योजना करने लगे। पूना वाले इस समाचार से इतने अधिक प्रसन्न थे, मानो स्वयं उन्ही की नियुक्ति हुई हो। आप की तबीअत कुछ अच्छी होने पर, एक दिन सवेरे १०—१५ आदमी डेप्यूटेशन ले कर आये और बोले—'हम लोगों की प्रार्थना है कि कल से आठ दिन तक हम लोगों को 'पान सुपारी' की आज्ञा दी जाय, और इस के अतिरिक्त हम लोगों के अन्य विचारों में किसी प्रकार की बाधा न डाली जाय, और जो कुछ हम लोग करें, उसे आप चुपचाप स्वीकार कर लें।' आप ने उन के आठ दिन का कार्य्य-क्रम देखना चाहा; परन्तु उन लोगों ने न दिखलाया। इस पर आपने कहा—'खैर न दिखलाओ।

मुझे उस में आग्रह नहीं है । परन्तु तुम लोग पूना वाले जो कुछ करने लगते हो, उसे हद्द तक पहुंचा देते हो; इसी का मुझे भय है । चाहे कोई बात अच्छी हो परन्तु उस का अन्त ही कर दो । यह मुझे पसन्द नहीं । मेरा कथन केवल यही है कि जो कुछ करो खूब सोच विचार कर करो ।' इस पर वे लोग 'अच्छा' कह कर हँसते हुए चले गये । दूसरे ही दिन से 'पान सुपारी' आदि का आरम्भ हो गया । हीरा बाग के समारम्भ और आतिशबाजी में जो धन व्यर्थ व्यय हुआ उसे आपने नापसन्द किया । इसलिए आपने वहां से शीघ्र ही बम्बई चला जाना निश्चय किया और हम लोग सोमवार की रात की गाड़ी से बम्बई चले गये ।

पूना वालों के कार्यक्रम के अनुसार हम लोगों का बम्बई जाने का दिन बुधवार निश्चय हुआ था । उस दिन उन लोगों ने बैण्ड के साथ बड़ा जुलूस निकालना और स्टेशन के प्लेटफार्म पर फूल बिछाने का विचार किया था । इस बात की भनक आपके कान में पड़ गई इसलिए सोमवार को ही पूना से चल देना निश्चय हुआ । उस दिन सन्ध्या को बाहर जाते समय आप कह गये थे-'केवल दो बक्स साथ ले कर रात के ११ बजे की गाड़ी से चलने की तैयारी करो । बाकी सामान कल'

आजायगा।' इतना सब कुछ होने पर भी ३०–४० आदमी स्टेशन पर पहुंच ही गये और जहां तक हो सका उन लोगों ने धूमधाम की ही। इस विषय की सब बातें समय समय पर 'ज्ञानप्रकाश' में प्रकाशित होती रही थी। बम्बई जाते समय, आपने पूना तथा अन्य स्थानों की सार्वजनिक संस्थाओं के लिए २५०००) दिये और इसका प्रबन्ध राघोपन्त नगरकर और आबा साहब साठे के सुपुर्द कर दिया था।

बम्बई पहुंचने पर पहला महीना केवल मित्रों से मिलने मिलाने में ही गुजर गया। जनवरी के अन्त में आपके पुराने प्रिय मित्र रा० ब० शंकर पाण्डुरंग पण्डित बीमार होकर, इलाज कराने के लिए बाल बच्चों सहित पोरबन्दर से बम्बई आये। डाक्टरों ने उन्हें ४–६ महीने वहीं रह कर चिकित्सा कराने की राय दी। उन्होंने बहुत तलाश किया, परन्तु हमारे पास कहीं कोई बंगला किराये पर न मिला। अन्त में वह हमारे बंगले में ही आ रहे। यद्यपि आपके साथ रहने से पण्डितजी बहुत प्रसन्न रहते थे, तो भी उनका शारीरिक रोग दिन पर दिन बढ़ता ही जाता था। आपको इसकी बहुत चिन्ता थी। आप रात में कई बार उनके कमरे में जाकर उन का हाल देखते और कभी कभी सारी रात उन्हीं की चिन्ता में बिता देते।

इसी प्रकार कुछ दिन चलने पर १८ मार्च सन् १८९४ को पण्डितजी का शरीरपात होगया। इस कारण आपको अपने सगे भाई या लड़के के मरने के समान दुःख हुआ। आप प्रायः कहा करते—'पण्डित के समान मानी, तेजस्वी, चतुर और तेज आदमी मिलना असम्भव है।' जब दोनों कुछ दिनों बाद मिलते तो उतने दिनों की सब छोटी बड़ी बातें केह सुनाते। मैं कभी कभी पूछती—'लोग कहते हैं कि बिना समान स्वभाव हुए स्नेह नहीं होता, परन्तु आप लोगों के स्वभाव मे आग पानी का अन्तर है। उन का सिद्धान्त है—' I would sooner break than bend '' अर्थात् 'नम्रभाव धारण करने की अपेक्षा कड़ेपन से काम लेना अच्छा समझना' और आपका सिद्धान्त इस से बिलकुल विपरीत है।' आपने कहा—'इस से यही मतलब निकलता है कि वह अधिक अच्छे है। अच्छे आदमियो में तेजस्विता अधिक दिखाई देती है। तुम टीका करनेवाले लोग जो चाहो सो कहो परन्तु हम लोगो का व्यवहार—'शिवस्य हृदये विष्णु-र्विष्णोश्च हृदये शिवः' के अनुसार ही है।'

इसी मार्च में माघ वदी १३ को पूना में नानू का जन्म हुआ था।

एक दिन भात कुछ कच्चा रह जाने के कारण, मैंने

रसोइये को कुछ कहा सुना। भोजनोपरान्त आपने हंसते हुए मुझ से कहा—'ओह! जरासी बात के लिए इतना बिगड़ने की क्या जरूरत थी। धान पचानेवाले लोगों को कच्चा भात क्या हानि पहुंचा सकता है? हम लोग युद्ध करनेवाली जाति के आदमी ठहरे। जिस समय तुम बिगड़ रही थीं, उस समय मैं इसलिए चुप रह गया, कि कहीं तुम्हारे मालिकपने में फ़र्क़ न आजाय। परन्तु भात के कच्चे रहने में रसोइये की अपेक्षा, उस पर निगरानी रखनेवाले का अधिक दोष है। नौकरों का काम तो ऐसा ही होगा; उन पर निगरानी रखनेवालों को ध्यान रखना चाहिए।' मैंने कहा—'यदि थाली में एक ग्रास अधिक आ जाय, तो उसे छोड़देनेवाले लोग क्या युद्ध करेंगे? और अब तो कलम में ही युद्ध रह गया है। अब तो हाथ में रखनेके लिए केवल छड़िया मिलती हैं; वे भी सरकार कुछ दिनों में बन्द कर देगी, छुट्टी हुई। यदि सचमुच कहीं युद्ध का काम आ पड़े, तो लोगों को कैसी कठिनता आ पड़े? छाती में दर्द होने के कारण, टर्पेंटाइन लगाने से जिन के छाले पड़ जाते हैं, वे लड़ाई के घाव क्यों कर सहेंगे?' आपने कहा—'यहां तो जगह जगह पर घावों के निशान हैं। यह कन्धे के घाव देखो। छाती पर तो इतने ज़ख्म हैं, कि

उन सबों को मिला कर हिन्दुस्तान का एक नक्शा सा बन गया है। अच्छी तरह देखो, ठीक वैसा ही है या नहीं?' यह कह कर आपने पहने हुए कपड़े उठा कर छाती दिखाई। मैंने भी हंसते हंसते पास जाकर देखा, तो सचमुच छाती के दाहिने भाग पर भारत का नक्शा सा बना हुआ था। आज से पहले मेरा ध्यान कभी उधर गया ही नही था। ये चिह्न किसी जख्म के नही थे, बल्कि कागज पर के वाटरलाइन्स के समान बने हुए थे। यद्यपि इस पर भी मैंने वह बात हँसी में उड़ा दी, तो भी मुझ पर उस का विलक्षण प्रभाव हुआ। वह प्रभाव शब्दों में नही बतलाया जासकता, तो भी मन ही मन में मुझे बहुत आश्चर्य हुआ।

प्रार्थना समाज में जिस दिन आप की प्रार्थना होती, उस दिन आप मुझे अवश्य साथ रखना चाहते थे। और मेरी भी, सब काम छोड़ कर, उस समय आप के साथ जाने की इच्छा होती थी। किसी दूसरे की उपासना मुझे इतनी पसन्द नहीं होती थी। इस पर मेरी साथ की स्त्रियां मुझ से ठट्ठा भी करती थी। उपासना से लौटते समय गाड़ी में आप मुझ से पूछते—'बतलाओ तो आज तुम ने क्या समझा?' यदि उपासना का विषय गूढ़ होने के कारण, मैं ठीक ठीक न कह

सकती तो आप कहते—'तब आज की उपासना ठीक नहीं हुई। हम ने यह हिसाब लगा रखा है कि जो उपासना तुम्हारी समझ में आ जाय, वही अच्छी हुई; और जिसे तुम न समझ सको, वह दुर्बोध हुई।'

आप के इस कथन का चाहे जो अभिप्राय हो, परन्तु यदि वास्तविक दृष्टि से देखी जाय तो आप की उपासना इतनी गम्भीर, भावपूर्ण और प्रेममयी होती थी, कि सुनने वाला उसे सुन कर धन्य २ कह उठता था। उतनी देर के लिए शरीर की सुधि भूल कर ऐसा मालूम होता था कि मानो आप प्रत्यक्ष देवता से बोल रहे हैं और वह सब बातें सुन रहा है। कभी २ शान्त और भक्तिपूर्ण भाव के कारण आप के मुख पर ऐसा तेज आ जाता था, कि मैं कई २ मिनटों तक पागलों की तरह टकटकी लगा कर आप के मुख की ओर ही देखती रह जाती थी। कभी कभी यह विचार कर कि देखने वाले लोग क्या कहेंगे, थोड़ी देर के लिए दृष्टि नीचे हो जाती, परन्तु फिर तुरन्त आप ही आप वह अपने पूर्व कृत्य में लग जाती। अब तक इस पूर्ण निराशा की स्थिति में भी, जब कभी वह समय और वह सुख याद आ जाता है, तो अपनी वर्त्तमान दीनावस्था भूल कर, उसी समय का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है,

कहती—'इन सब नवीन अभंगों को एक पुस्तक बनानी चाहिये। कल्याण शिष्य की तरह मैं भी यह सब अभंग लिख डालूं, तो बहुत अच्छा हो।' इस पर उत्तर मिलता—'हम भोले आदमी ठहरे। यमक और ताल सुर का न तो हमें ज्ञान है, और न उस की आवश्यकता ही है। जिससे हम यह सब कहते हैं, वह सब समझता है। उस का ध्यान इन सब ऊपरी बातों की ओर नहीं जाता।

पांच बजे अभंग और भजन हो जाने पर, संस्कृत के कुछ श्लोक और स्तोत्र पढ़ कर, आध घंटे में आवश्यक कार्यों से निवृत्त होते और छः बजे दीवानखाने में बैठ कर काम आरम्भ कर देते। पहले दैनिक पत्रों के तार पढ़ते और तब डाक देखते। साढ़े नौ बजे स्नान के लिए उठते। इसके बाद भोजन करके साढ़े दस बजे कोर्ट जाते। ग्यारह बजे से पांच बजे तक हाईकोर्ट का काम करते। बीच में जब जलपान की छुट्टी होती तो उस समय, घर से ब्राह्मण जो कुछ ले जाता; उस में से गरम गरम पदार्थ थोड़ा सा खा लेते। जलपान कर के और वहीं थोड़ा सा विश्राम कर के फिर काम पर जा बैठते। पांच बजे, दो तीन मील पैदल चल कर घर आते और गाड़ी साथ में धीरे २ खाली चलती। इस प्रकार सन्ध्या

का टहलने का समय बच जाता। छः बजे घर पहुँच कर आध घंटे सस्ताते और बात चीत करते और फिर सुबह आई हुई डाक का उत्तर लिखते । पत्रों का उत्तर दिन के दिन ही भेजने की ओर अधिक ध्यान रहता था।

छुट्टी के दिनो में सवेरे और कभी २ दोपहर को मिलने आने वाले मित्रो की भीड़ रहती । जैसे लोग आते, उन से वैसी ही बातें होती। जो लोग जिस योग्यता के होते, उन से वैसी ही मान मर्य्यादा के साथ बातें होतीं। यदि किसी के हाथ से कोई सर्वसाधारणोपयोगी कार्य्य हो जाता, तो उसे अधिक उत्साह दिलाते। और उन लोगों की जाति या गांव में किसी संस्था की कमी और आवश्यकता होती, तो उसे स्थापित करने की सलाह देते। वे लोग भी मन में समझते कि आज नई बात मालूम हुई, और जाकर, बड़े उत्साह से अपने काम में लगते। इन लोगों के चले जाने पर मैं दीवानखाने में जा कर पूछती—'आज किन २ लोगों पर कौन २ से काम लादे गये ? परन्तु इन कामों के लादने में तारीफ तो इस बात की है कि जिन पर काम लादे जायँ, वे घबड़ाते नही किन्तु उलटा समझते है कि नई बात मालूम हुई।'

सन् १८९५ में जब हम लोग महाबलेश्वर से आ रहे

थे तो वाई से आगे वाठारे के पास रास्ते में हम लोग एक घाट पर पहुंचे । दौरे में आप बैलों और घोड़ों के अधिक श्रम के विचार से १२ कोस से अधिक की मंजिल नहीं करते थे और जब कभी रास्ते में घाट या नदीतट पड़ता तो जब तक वह समाप्त न हो जाता तब तक पैदल ही चलते थे। कोचवान को ऐसे अवसरों पर बड़ी ताकीद रहती थी कि वे धीरे धीरे घोड़ों को ले आवें । उस समय सखू सात वर्ष की और नानू ढाई वर्ष की थी । उन दोनों को सिपाही के साथ गाड़ी पर छोड़ कर मैं भी आप के पीछे पीछे चली परन्तु लड़कियों को समझाने में मुझे दस मिनट लग गये और इतने में आप बहुत आगे बढ़ गये । मैं ने सोचा कि सन्ध्या को अंधेरे में आप को दूर की चीज़ अच्छी तरह दिखाई नहीं देती साथ में कोई आदमी भी नहीं है इसलिए मैं बहुत शीघ्रता से आप से मिलने के लिए चलने लगी ।

जब मैं कुछ नजदीक पहुंच गई तो आप ने भी चाल धीमी कर दी । तोभी कुछ लम्बे होने के कारण आप के डग बहुत बड़े २ पड़ते थे और नाटे आदमियों को आप के साथ चलने में बहुत कठिनता पड़ती थी इसलिए हम में दस बारह क़दम का अन्तर था । उस समय आप धीरे २ एक अभंग कहते जा रहे थे इसलिए मेरा

पास पहुंचना भी आप को न मालूम हुआ। इतने में एक पुल के पास चार साढ़े चार इंच लम्बे दो काले बिच्छू आगे पीछे चले जा रहे थे। मेरी दृष्टि आप के पैरों की ओर ही लगी हुई थी इसलिए मैं ने उन्हें देख लिया। मैं ने देखा कि आप का दूसरा या तीसरा कदम उन्हीं बिच्छुओ पर पड़ेगा। इस भय से मैं बहुत घबड़ा गई और जोर से चिल्लाना ही चाहती थी कि आप उन्हें लाघ कर दो तीन कदम आगे बढ़ गये। इन बातो को लिखने में तो पांच सात मिनट लग भी गये परन्तु इस घटना को ५-७ सैकेण्ड भी न लगे। इधर तो इस भय से कि कहीं आप के पैर उन बिच्छुओं पर न पड जायँ मैं मन ही मन बहुत घबडाई और मेरी आखें बन्द हो गई और आंख खोलते ही जब मैं ने देखा कि आप उन्हें लांघ कर जल्दी जल्दी चले जा रहे हैं तो मुझे बहुत आनन्द हुआ और इस अरिष्ट के टल जाने के कारण मैं ने ईश्वर का उपकार माना। मैं ने पास जा कर घबड़ाई हुई आवाज में पूछा–'पैर में कुछ चोट तो नही आई ?' आप ने रुक कर कहा–'क्यों, क्या हुआ ? इतना दम क्यों फूल रहा है ?' मै ने समझा कि शायद आप को कहीं गाड़ी की चिन्ता न पड़ गई हो, इसलिए कहा–'कुछ नही। गाड़ी पीछे चली आ रही है।

मैं जरा जल्दी जल्दी आई इस से दम फूलने लगा। कहीं बैठ जांय तब तक गाड़ी आ जायगी। अब चढ़ाई खतम हो गई। गाड़ी में बैठने में कोई हर्ज नहीं है।' इतना कहने पर भी आप बैठे नहीं इसलिए मैं ने फिर प्रार्थना पूर्वक कहा—'थोडी देर बैठ जाते तो अच्छा होता। दम फूलने लगा है।" आप ने कहा—'हमारा दम तो नहीं फूलता। पुरुषों का जन्म श्रम और कष्ट ही के लिए हुआ है। हम लोग घाटियों और पहाड़ियों पर चलने वाले ठहरे। तुम्हारा ही दम फूल रहा है इसीलिए तुम ऐसी बातें कह रही हो। तुम कहो तो तुम्हारे लिए बैठ जायँ।' मैं ने कहा—ख़ैर, मेरे लिए ही बैठ जाइये।'

सड़क की बगल में लगे हुए पत्थरों पर हम लोग बैठ गये। गाड़ी आने में अभी देर थी; मैं ने बिच्छुओं का सब हाल कहा तो आप बोले—"अब मैं तुम्हारे घबड़ाने का कारण समझ गया। उस समय तुम्हारी घबड़ाई हुई आवाज और डरी हुई सूरत देख कर मुझे गाड़ी की चिन्ता हो गई थी।" मैं ने कहा—'आज बड़ा भारी अरिष्ट टल गया। यदि पांव उन बिच्छुओं से छू भी जाता तो वह काट लेते। रात के समय इस जंगल में दवा आदि कहां से आती?' कुछ देर चुप रह कर आप बोले—'अब तो अरिष्ट टल गया न? इस से यही

समझना चाहिए कि ईश्वर सदा हमारे साथ है और पग पग पर हमें संभालता है। बिच्छुओं पर न पड़कर जो पैर आगे पड़ा वह अवश्य उसी की योजना है। जब तक वह रक्षा करना चाहता है तब तक कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। यही भाव सब को रखना चाहिए। "जेथे जातो तेथें तू माझा सांगाती। चालविशी हातीं धरूनीया।' अर्थात् 'जहा मैं जाता हूं वहां तू मेरे साथ रहता है, मानो मेरा हाथ पकड कर तू मुझ को चलाता है।' यह अभंग कितना ठीक है। धन्य वे पुरुष और उन का निस्सीम भाव। जब अपने आपको अनुभव होता है तभी यह उक्ति ठीक मालूम होती है। हम दुर्बल मनुष्यो के लिए ऐसा भाव मन में धारण करना ही मानो बड़ा सामर्थ है, और उसी में अपना कल्याण है।'

इतने में गाड़ी भी आ गई। हम लोग वाठरा पहुंचे और वहा से रात के आठ बजे की गाड़ी से पूना चले आये।

---

[२०]

बीमारों की चिन्ता।

कितने ही दूर के नातेदार या किसी नौकर चाकर की बीमारी का हाल आप ज्योंही सुन पाते त्योंहीं आप,

उस बीमार की कोठरी में जा कर उस का हाल चाल पूछते, और मुझे ताकीद कर देते—'डाक्टर बुलवा कर, तुम स्वयं उस के इलाज का प्रबन्ध करो; दूसरों पर न छोड़ दो।' यही नहीं, बल्कि जब तक वह आदमी अच्छी तरह भला चंगा होकर चलने फिरने न लग जाता, तब तक दोनों वक्त भोजन के समय उस का हाल चाल पूछते। एक बार मैंने कहा—'इतने कामों और अनेक प्रकार के विचारों में फँसे रहने पर भी जब कि कभी २ घर के आदमियों तक से बात करने का अवसर नही मिलता, तब दिन में दो बार इन छोटी छोटी बातों के पूछने का ध्यान क्योंकर बना रहता है? बहुत चेष्टा करने पर भी कभी २ मुझे कोई बात याद नहीं रहती है। विशेषतः कार्य्य की अधिकता होने पर तो और भी भूल जाती हूं। कभी २ इस भूल जाने के कारण मुझे बातें भी सुननी पड़ती हैं। जब तक कोई काम या मनुष्य सामने न आ जाय तब तक उस का ध्यान ही नहीं आता।' आपने कहा—'किसी काम का ध्यान रहना, उस काम की चिन्ता और उत्तरदायित्व पर अवलम्बित रहता है। यदि चिन्ता या उत्तरदायित्व का ध्यान न रहे तो वह काम अवश्य ही भूल जायगा। जो बात मन में लग जाती है, वह बहुत कम भूलती है। हां, यदि

मन में विशेष दुःख, वेदना या चिन्ता हो, तो बात जरूर भूल जाती है। ऐसा अवसर बहुत कम आता है, और उसकी गणना भी दोष में नहीं होती।'

सन् १८९६–९७ में जब बम्बई में पहले पहल प्लेग आया, तो उस समय लोग इस का नाम भी न जानते थे, परन्तु जब बम्बई टाइम्स, गज़ट, एडवोकेट आदि पत्रों में इस के सम्बन्ध में कालम के कालम निकलने लगे, तब हम लोगों का ध्यान उस ओर गया। दो एक बार नौकरों ने घर में चूहे मरने की बात भी कही, परन्तु मैं ने जब तक इस सम्बन्ध में समाचारपत्रों में न पढ़ लिया, तब तक उस ओर ध्यान भी न दिया, और न आपको ही उसकी सूचना दी।

एक दिन टाइम्स में निकला कि जब घर में चूहे मरें, तो प्लेग का आगमन समझ कर वह स्थान छोड़ देना चाहिये। आप ने वह पत्र मुझे पढ़ने के लिए दिया। मैं ने दोपहर को जब उसे पढ़ा तो मुझे मकान छोड़ने की चिन्ता हुई। दूसरे दिन बालकेश्वर, महालक्ष्मी, चौपाटी आदि में पांच सात मकान देखे, परन्तु कोई भी ठीक न मालूम हुआ। पहले पहल प्लेग होने के कारण, हाईकोर्ट के वकीलों ने भी प्रार्थना की कि– प्लेग के कारण मकान बदलना आवश्यक होगा और इस-

लिए ग्यारह बजे कोर्ट में हाजिर होना असम्भव होगा। इसलिए कोर्ट हम लोगों की कोई व्यवस्था करे।' इस पर कोर्ट ने ग्यारह से साढ़े बारह बजे का समय कर दिया और सोम, मंगल, बुध तथा बृहस्पतिवार, सप्ताह में चार दिन कोर्ट खुलने लगा, शेष तीन दिन छुट्टी रहती।

एक दिन मैं ने रसोई बनाने वाली के लड़के को लंगड़ाते देखा। बहुत पूछने पर मालूम हुआ कि उसके सुपारी के बराबर गिलटी भी निकल आई है। मैंने उससे चुपचाप कोठरी में सो रहने के लिए कहा। उस समय भोजन तैयार था; कोर्ट जाने की तैयारी हो रही थी। मैं सोचने लगी कि इस समय यह बात कहूं या न कहूं। उस दिन मैं ने भोजन दूसरे स्थान पर ऊपर परोसवाया था। आपके कारण पूछने पर मैंने कहा—'आज घर में मरे चूहे मिले है। सन्ध्या को क्या प्रबन्ध होगा?' आपने कहा—'आज से तीन दिन की छुट्टी है। दोपहर की गाड़ी से हम लोग लुनौली चले चलेंगे। आवश्यकतानुसार चीजें, तथा लड़कियों को लेकर तुम बोरीबन्दर पर आ जाना। मैं भी कोर्ट से परभार स्टेशन पर आ जाऊंगा; वहीं से साथ हो लेंगे।

तीन बजे तक मैं ने घर का सब प्रबन्ध ठीक कर लिया, और उस बीमार लड़के तथा उस की मा को

अस्पताल भेज दिया। सिपाहियों और पहरे वालों को भी मैं ने बाहर दरवाजे पर से ही पहरा देने के लिए कहा और जोखिम की चीजें अपने साथ बक्सों में ले ली। सिपाहियों, आप के रीडर, स्कूल के मास्टर और चार पाच विद्यार्थियों के रहने का सब सामान ठीक कर के उन लोगो के लिए मै ने सामने के एक मकान का प्रबन्ध कर दिया। उसी दिन रात को दस बजे हम लोग लुनौली जा पहुंचे।

दूसरे दिन सवेरे ही बम्बई से दो पहरेदारों को प्लेग होने का तार आया। मैं ने अपने भाजे और एक सिपाही को उन का प्रबन्ध करने के लिए बम्बई भेजा। उन्हें अलग बुला कर मैं ने कह दिया था तुम लोग होशियारी से रहना। उन लोगो को अस्पताल भेज देना। मजिस्ट्रेट को पत्र लिख दिया है। वह बंगले की रखवाली के लिए पेन्शनर पुलीस भेज देंगे।

आप को किसी प्रकार की सूचना दिये बिना ही मैं ने यह सब प्रबन्ध किया था। यह बीमारी स्पर्शजन्य थी इसलिए जहा तक हो सका आप को उस से अलग रखने का मैं ने प्रबन्ध किया। किसी की बीमारी का समाचार सुनते ही आप तुरन्त उस के पास पहुंचते इसलिए मैं ने आप को किसी प्रकार की सूचना ही न दी।

जहां तक मुझ से हो सका मैं ने ही सब का उचित प्रबन्ध कर दिया।

यदि बम्बई से चलते समय आप को रसोईदारिन के लड़के की बीमारी का हाल मालूम होता तो उस दिन हम लोग लुनौली भी न आ सकते। अस्पताल भेजते समय का यदि उस का रोना आप सुन पाते तो उसे घर में ही रख कर उस की चिकित्सा कराते परन्तु दूसरे दिन तार आने पर यह बात खुल गई और मुझे नाराज़गी भी सहनी पड़ी। वासुदेव और सिपाही के बम्बई जाने का हाल आप को मालूम था इसलिए सन्ध्या तक तीन चार बार आप ने कहा—'यदि इस समय हम लोग बम्बई में होते तो बहुत अच्छा होता।' मैं ने समझ लिया कि यद्यपि ऊपर से सब कार्य्य शान्ति पूर्वक ही रहे हैं तो भी मन बम्बई में ही लगा है।

बम्बई पहुंच कर ट्राम में दुर्गाप्रसाद सिपाही के भी गिलटी निकल आई। वासुदेव ने पहले दोनों सिपाहियों को अस्पताल भेजा। तीसरे दिन शनिवार के दोपहर को भोजन के समय दुर्गाप्रसाद की बीमारी का तार आया। तार पढ़ते ही आप ने चिन्तित हो कर कहा—'मैं आज दो बजे की गाड़ी से बम्बई जा कर वहां का कुल प्रबन्ध कर आता हूं।' मैं ने पूछा—'आप वहां

जा कर क्या प्रबन्ध करेंगे ?' आप ने कहा—'क्या पागलों की सी बातें करती हो ? विद्यार्थियों तथा और लोगों को अच्छा स्थान देख कर ठहराने के लिए मुझे आज ही बम्बई जाना चाहिए।'

उस चिन्ता और क्रोध के समय भी मुझे हंसी आ ही गई, परन्तु मैं चटपट रसोई में चली गई, नही तो मेरी हँसी देख आप को और भी क्रोध आता। मेरी हँसी का कारण बहुत ठीक था। दया और चिन्ता के कारण आप ने इतना भी विचार न किया कि आज तक हम ने कभी ऐसा काम किया है या नहीं और आगे भी हम से होगा या नहीं। आप के भोजन कर चुकने पर मैं भोजन के लिए बैठी। मैं ने धीरे से पूछा—'आज बम्बई का क्या निश्चय हुआ ?' परन्तु उत्तर नही मिला; मालूम हुआ अभी विचार हो रहा है। मैं ने फिर कहा—'यदि मैं ही जा कर वहा का सब प्रबन्ध ठीक कर आऊं तो अच्छा हो। या तो रात की गाडी से मैं लौट आऊंगी या तार दूंगी। लड़कियों को मैं यही छोड़े जाती हूं। कल्याण और भाण्डुप के दोनो मकानों में से एक ठीक कर के मैं सब प्रबन्ध कर दूंगी। आप ने आज तक कभी ऐसे काम किये नहीं इसलिए मेरा जाना ही ठीक होगा।' थोड़ी देर सोच कर आप ने पूछा—'तुम वहा कैसे प्रबन्ध

करोगी और लड़कियां तुम्हारे बिना कैसे रहेंगी ?' मैं ने कहा—'वहां आप के परिचित लोग मेरी सहायता करेंगे और लड़कियों को मैं समझा लूंगी।' मुझे दो बजे की गाड़ी से जाने की आज्ञा मिल गई। मैं ने चटपट सखू और नालू को समझा बुझा दिया और उन के लिए खिलौने और खाने की चीजें भी पूछ लीं। चलते समय उन दोनों ने मुझ से कह दिया—'अगर कल दोपहर की गाड़ी से तुम न आओगी तो हम भोजन न करेंगी और न तुम से बोलेंगी और फिर न कभी तुम्हें अकेली जाने देंगी।'

मैं वहां से चल कर कल्याण पहुंची। वहां दो तीन बंगले देखे परन्तु पसन्द नहीं हुए। वहां प्लेग भी सुनने में आया। वहां से भाण्डुप पहुंची। वहां एक बड़ा बंगला, जिस में बाग भी था, ठीक हुआ। उस बंगले में रहने वाले आदमी से मैं ने कहा—'फौरन आदमी भेज कर बम्बई से मजदूर बुलवा कर आज रात को ही बंगला साफ करा कर चूना फिरवा दो जिस से कल सवेरे तक रहने लायक हो जाय।' उस ने कहा—'सब ठीक हो जायगा।' मैं ने तुरन्त बम्बई में काशीनाथ को एक पत्र लिखा—'मैं ने भाण्डुप में गरुड का बंगला पसन्द किया है। कल सवेरे की गाड़ी से तुम सब लोगों को यहां भेज दो। और तुम सन्ध्या को कोर्ट से लौट कर सब आवश्यक

सामान और पुस्तकें ले कर यहां चले आओ। कल सब प्रबन्ध कर के तार देना। परसों सोमवार को सवेरे हम लोग भी यहां आ जायेंगे।' यह सब प्रबन्ध करके, दस बजे चल कर, रात के एक बजे मैं लुनौली पहुंची। घर आकर मैंने सब हाल कह सुनाया। मालूम हुआ, इन सब कामों से आपका सन्तोष हो गया। दूसरे दिन सन्ध्या को भाण्डुप से तार आया—'सब ठीक है।' दूसरे दिन हम लोग भाण्डुप पहुंचे। उस अवसर पर लुनौली और भाण्डुप दोनों स्थानों में रहने के लिए कुल आवश्यक सामान बराबर थे, इसलिये एक जगह से दूसरी जगह सामान लाद कर ले जाने का कष्ट न उठाना पड़ता था। बंगले पर पहुंचते ही आपने काशीनाथ को पढ़ने के लिए बुलाया, परन्तु मालूम हुआ कि वह बम्बई चला गया है।

स्नान और भोजन करके आप कोर्ट गये, नियमानुसार दोपहर को जब ब्राह्मण जलपान ले कर कोर्ट गया तो उससे सरिश्तेदार ने कहा—'काशीनाथ का पत्र आया है। उसने लिखा है कि—'मुझे सोमवार को बुखार आया और गिलटी निकल आई, इसलिए मैं बायकला के हिन्दू अस्पताल में आया हूं। मैं अच्छा हूं। डाक्टर साहब मेरा इलाज कर रहे हैं। यह सब हाल वहिनी

बाई से (मुझ को) कहला देना । मैं ने यह पत्र राव साहब को (आपको) ही लिखा होता, परन्तु आप व्यर्थ चिन्तित होते, और मेरी दशा चिन्ताजनक नहीं है। तीन चार दिन में मैं अच्छा हो जाऊंगा ।' वह पत्र उसने बजाबा (ब्राह्मण) को दे दिया ।

बजाबा सन्ध्या को छः बजे भाण्डुप पहुंचा । उसने यह हाल मुझ से कहा । मुझे बहुत चिन्ता हुई । मैं ने सोचा यदि आप यह बात सुन पावेंगे, तो रात को भोजन भी न करेंगे और रात ही को अस्पताल पहुंचेंगे। मैं सुन चुकी थी कि सूर्य्यास्त से सूर्य्योदय तक प्लेग का संसर्ग अधिक बाधा डालता है, इसलिए मैं आपको प्लेग के रोगी के पास जाने देना नहीं चाहती थी। मुझे यह भी विचार था कि यदि मैं आपसे यह हाल न कहती हूं, तो पीछे आप अप्रसन्न भी बहुत होंगे। क्योंकि यह लड़का दूर के—सासजी के नैहर का—रिश्तेसे अपना ही होता था। अंगरेज़ी लिखने पढ़ने में भी वह बहुत अच्छा था । लगातार पांच पांच छः छः घण्टे काम करता था। खिलाड़ी और लापरवाह भी था । एक मात्र आप पर उस की भक्ति बहुत अधिक थी । होशियार होने के कारण, आप भी उस से खुश रहते थे । यदि मैं कभी उस पर अप्रसन्न होती तो आप कहते—'यह अभी लड़का है । इस की बातों पर ध्यान

उस का भाषानुवाद यह है:—" मेरे स्वामी की ओर देखो, वे कैसे दयालु हैं, विशेषतः मुझ पर। उन्हों ने इस प्लेग-अस्पताल में अपनी ही धर्म्मपत्नी को भेजा है। वह आप भी मुझे देखने को आ रहे हैं। वह कल ही आते, परन्तु आप जानते हैं कि कार्य्यरत रहने से उन को अवकाश नहीं रहता। वह रात दिन, जब तक कि वह सो न जावें, कार्य्य में प्रवृत्त रहते हैं। आप जानते हैं मैं उन का रीडर (reader) हूं। मैं प्रति दिन घण्टों पढ़ता हूं। मैं बेकार कभी नहीं बैठता परन्तु तुम ने मुझे बन्दी बना रक्खा है। क्या आप नहीं जानते मैं कौन हूं? मैं जस्टिस रानाडे का रीडर हूं। वह मेरे बिना कुछ काम न करेंगे। मैं उन का प्राइवेट सेक्रेटरी हूं। क्या आप नहीं जानते मैं किस का आदमी हूं? क्या वह पसन्द करेंगे यदि मैं बिना कुछ किये निकम्मा बैठा रहूं? मुझे उठ कर अवश्य अपने काम में प्रवृत्त हो जाना चाहिये। मैं किसी की बात न सुनूंगा।] यह कह कर वह जोर से चिल्लाने और उठने की चेष्टा करने लगा। डाक्टर ने मुझे इशारा किया और मैं वहा से बाहर निकल आई। वहां से चल कर मै जैन-हास्पिटल में पहुंची। वहां अपने तीनों नौकरों को देखा और उन का हाल पूछ कर मैं साढ़े दस बजे भाण्डुप लौट

आई। उस समय आप भोजन कर रहे थे। मैं ने पहले सिपाहियों और बाद में काशीनाथ की बीमारी का हाल कह सुनाया। काशीनाथ का हाल सुनते ही आपने भोजन से हाथ खींच लिया और आखों में जल भर कर कहा—'यदि हम लोग पन्दरह दिन पहले ही बंगला छोड़ देते, तो यह अवसर न आता। यह लड़का बहुत होनहार और बड़े काम का है।' भोजन कर के आप कपड़े पहन कर चलते समय चोबदार से कहने लगे—'रास्ते में काशीनाथ को देखते हुए चलना होगा।' उस ने कहा—'तब कोर्ट पहुंचने में बहुत देर होगी।' इस पर आपने कहा—'अच्छा सन्ध्या को लौटते समय सही, परन्तु भूलना मत।'

दोपहर को तीन बजे अस्पताल के डाक्टर ने कोर्ट में समाचार भेजा कि आप के पांच नौकरो में से तीन नौकर मर गये। कृपया सूचित करें कि उन की अन्तिम क्रिया आप की ओर से होगी या अस्पताल की ओर से।' आपने दो आदमी अस्पताल में भेजे और एक मेरे पास भेजा। मुझे सुन कर बहुत दुःख हुआ। आपने आज्ञा भेजी थी कि काशीनाथ का प्रबन्ध स्वय करो और शेष दोनो आदमियों का उन की जाति वालो से करा दो। मै ने तदनुसार ही किया और ५०) देकर उस चोबदार को अस्पताल भेजा।

उस दिन सन्ध्या को आप की तबीअत ठीक न मालूम पड़ी। रात को सोये भी नहीं। अन्दाज से मालूम होता था कि किसी बड़ी भारी भूल का पश्चात्ताप है। उसी समय अपने प्रिय मित्र रा०ब० चिन्तामणि भट की मृत्यु का समाचार सुन कर और भी दुःख हुआ। बीच बीच में लिखना छोड़ कर आप ठण्डी सासें लेते और नेत्रों से जल बहाते। जहां आप हर दम कोई न कोई काम किया करते थे, वहां दम दस मिनट चिन्तायुक्त हो कर बैठे रहते। आठ दस दिन में भोजन भी बहुत कम रह गया। कोई चीज अच्छी ही नहीं लगती थी। मैं नित्य नए पदार्थ तैयार करती, परन्तु आप की रुचि ही खाने की ओर नहीं होती थी। एक दिन आप ने कहा भी—'तुम इतने परिश्रम से तरह तरह की चीज़ें करती तो हो; परन्तु मुझे तो कुछ अच्छा ही नहीं लगता।

महीना सवा महीना इसी प्रकार बीत गया। प्लेग के कारण हाईकोर्ट भी मार्च से ही बन्द होगया। आपकी तबीअत सुधारने के लिए मुझ को महाबलेश्वर चलने के लिए बहुत हठ करना पड़ा। अन्त में हम लोगो का महाबलेश्वर जाना निश्चय हो ही गया।

बम्बई से महाबलेश्वर जानेवालों के लिए, पांचगणी के पास दस दिन का क्वारेण्टाइन था। हाई कोर्ट बन्द

होने में भी १०-११ दिन की देर थी। इसलिए दूसरे ही दिन मैंने गाड़ी, आवश्यक सामान तथा नौकरों को पहले ही भेज दिया। रहने के लिए बंगला भी ठीक होगया। चलने से एक दिन पहले मैंने प्रार्थना की—'महाबलेश्वर में किसी प्रकार का परिश्रम न करके, यदि आप कुछ दिनों तक विश्राम करें, तो शरीर नीरोग हो जायगा और नई शक्ति आवेगी।' इस पर आपने केवल 'अच्छा' कह दिया जिस से मेरा सन्तोष नहीं हुआ। मैंने फिर दृढ करने के लिए वही बात कही। इस पर आपने कहा—'तुम्हारे विश्राम का मतलब मैं नहीं समझा। हम तो समझते हैं कि हम जो कुछ करते हैं, उस में काम भी होता है और विश्राम भी मिलता है। तुम स्त्रियां पुण्यवान् हो; ईश्वर ने हम से विरुद्ध और अच्छी प्रकृति तुम को दी है। कष्ट भोगने के लिए उसने पुरुषों को ही बनाया है और घर में बैठ कर आराम करने के लिए स्त्रियों को जन्म दिया है। हम लोग चाहे कितना ही नाप तोल कर खायँ तो भी बिना सात घण्टे परिश्रम किये नहीं पचता और तुम लोग चाहे जो और जितना खा लो, सब बैठे बैठे हजम हो जाता है। ईश्वर ने सब से बड़ा अधिकार तुम लोगों को यह दे रखा है कि यदि तुम लोग और कुछ न करके

पुरुषों से केवल बहस कर लिया करो, तो भी तुम्हारा काम चल जाय। और इसी काम में तुम बहुत कुशल भी हो।'

मैं जानती थी, कि जो काम आप करना नही चाहते थे, उसे युक्तिवाद से उड़ा देते थे इसलिए उस समय मैं चुप हो रही। इधर आपने एशियाटिक सोसाइटी से आवश्यक पुस्तकें मंगाने का प्रबन्ध भी कर लिया। निश्चित समय पर हम लोग महाबलेश्वर भी पहुंच गये।

इस बार मेरे रिश्ते के श्वशुर विट्ठल काका भी साथ थे। यद्यपि उनकी अवस्था सत्तर बहत्तर वर्ष की थी, तो भी वे शरीर से अच्छे हृष्ट पुष्ट थे। उनका स्वभाव बहुत तीव्र था। वह बड़े भक्त और पाण्डुरंग के उपासक थे। उनका अधिकाश समय ईश्वर-भजन मे ही जाता था। भोजन करके आपने मुझ से कहा—'आज दोपहर को विट्ठल काका ने बड़ी दिल्लगी की। हमारे रानडे परिवार के सभी लोग मजबूत होते आये हैं, अब पीढ़ी दर पीढ़ी वह बल कम होता जाता है। पूना की जाच से चिढ़ कर तो काका यहां आये, परन्तु यहा भी जाच ने उन का पीछा न छोड़ा। हम लोगों के देख चुकने पर डाक्टर ने काका के थरमामेटर लगाना चाहा

काका ने कहा—'थर्मामेटर से तुम्हें क्या मालूम होगा ? तुम कह सकते हो, मेरी उमर कितनी है ? तुम यही देखना चाहते हो न कि हमें बुखार है या नही ? तो लो, देखो !' यह कर उन्होंने डाक्टर की कलाई पकड़ ली। डाक्टर ने हंस कर कहा—'छोड़ दो, महाराज, हमारा हाथ। तुम्हें बुखार उखार कुछ नही है। तुम हम से भी ज्यादह मजबूत हो।' काका ने उनका हाथ छोड़ दिया, और हमारी गाड़ी आगे बढ़ी।

महाबलेश्वर मे आठ दस दिन रहने पर, आपकी तबीअत ठीक हो चली। निद्रा भी आने लगी, और भूख भी लगने लगी। इस के १५ दिन बाद तबीअत और भी ठीक होगई, और हम लोग आनन्द पूर्वक बम्बई लौट आये।

मेरे श्वशुर जी के शरीरान्त होने के दो तीन बरस बाद विट्ठल काका साहब से लड़ कर और नौकरी छोड़ कर हमारे ही यहा आरहे थे। यह पहले १५) २०) मासिक पाते थे। नौकरी छोड़ कर आप तीर्थयात्रा करने गये और लौट कर सन् १८७९ मे हमारे यहा आरहे। इन्होने समस्त भारत की यात्रा १५ वर्षों मे पैदल की थी। प्रवास के अनुभव के कारण आपकी श्रद्धा भक्तिमार्ग पर अधिक होगई। यह दिन रात भजन पूजन में निमग्न रहते थे।

केवल स्नान और भोजन के लिए यह अपने कमरे से बाहर निकलते थे। अपनी कोठरी में कभी यह ज़ोर २ से इस प्रकार बोलते मानो किसी से बातें कर रहे हैं। कभी क्रोध और कभी आश्चर्य दिखलाते। कभी कहते 'तुम दयालु तो हो, पर मिलते क्यों नहीं?' और इस प्रकार ईश्वर से रूठ कर बैठ जाते। और कभी रोते रोते हिचकी बन्ध जाती। मै प्रायः रात को इन के दरवाजे से कान लगा कर इन की ये बातें सुना करती। कभी कभी इन की बातें सुन कर मेरा हृदय गद्गद् हो जाता।

एक बार इन के दफ़्तर के बड़े साहब ने आज्ञा दी कि जिन लोगों की नौकरी २५ वर्ष से अधिक हो गई हो, उन्हें पेन्शन दी जाय। विट्ठल काका ने सरिश्तेदार से पेन्शन मिलने का कारण पूछा तो उन्हों ने कहा—'२५ वर्ष काम कर चुकने पर लोग वृद्ध, निर्बल और कार्य्य के अयोग्य हो जाते हैं। उन्हें अलग कर के उन की जगह पर युवक भर्ती किये जायेंगे।'

दूसरे दिन सवेरे ही काका साहब के बंगले के दरवाज़े पर जा खड़े हुए। आठ बजे साहब जब घूमने निकले, तो दरवाजे पर उनसे काका की भेंट होने पर बात चीत हुई। साहब के पूछने पर उन्हों ने कहा—'मैं विट्ठल

बाबा जी रानाडे, अमुक दफ़्तर का क्लर्क हूं।' साहब ने कहा—'इस वक़्त हम बाहर जाते है, फिर किसी वक़्त आना।' उन्हों ने कहा—'मुझे बंगले पर आने या कुछ कहने की जरूरत नहीं। आप दो मिनट ख़ाली खड़े रहे।' यह कह कर उन्होने लांग कस और अंगरखे की बाहें चढ़ा कर चार बैलों के खींचने लायक़, सड़क कूटने के पत्थर का बेलन, उस के डण्डे पकड़ कर, खींच कर साहब के सामने ला रक्खा। साहब ने आश्चर्य्य से पूछा—'यह क्या करते हो?' विट्ठल काका ने कहा—'मैंने दफ़्तर में सुना है कि जिनकी नौकरी २५ वर्ष की हो गई होगी, उन्हें पेन्शन मिलेगी। आपके यहां दर्ख़ास्त देने पर मुझ गरीब की सुनवाई कहां होगी? लिखी दर्ख़ास्त देने के बखेड़े में न पड़ कर, मै ने यह प्रत्यक्ष दर्ख़ास्त दी है। यदि अब भी दुर्बलता का सन्देह हो तो, साहब खुद बेलन घसीट कर देखलें।' इतना कह और अभिवादन कर विट्ठल काका चल दिये।

दूसरे दिन साहब ने पेन्शनरों की सूची से इनका नाम काट दिया। श्वशुर जी के पूछने पर काका ने यह सब हाल कह सुनाया था।

जब आप तीन वर्ष की अवस्था में, बैलगाड़ी पर से गिर पड़े थे, तो इन्हीं विट्ठल काका ने आवाज सुन कर, आपको घोड़े पर बैठा लिया था।

(२१)

महाबलेश्वर-यात्रा और सन-स्ट्रोक।

सन् १८९९ में महाबलेश्वर जाने से पूर्व, यूनिवर्सिटी की दो तीन बैठकें हुई थीं, जिनमें आपने ऊंची परीक्षाओं में मराठी प्रविष्ट कराने का प्रश्न उठाया था। उन दिनों इस पर विशेष आन्दोलन करके, इसे बहुमत से पास कराने के उद्देश्य से आप लेख लिखा करते थे। इसके अतिरिक्त शुगर बाउन्टी के प्रश्न पर लेख लिखने का भार भी आप पर ही आ पड़ा था। इन लेखों के लिए, आपने क्लर्क को एशियाटिक सोसायटी को पत्र लिख कर, साथ ले चलने के लिए पुस्तकें मंगाने की आज्ञा दी थी।

महाबलेश्वर चलते समय हम लोगों का मुख्य उद्देश्य केवल यही था कि वहां चल कर विश्राम करें और वहां के सृष्टिसौन्दर्य से मन बहलावें परन्तु वहां भी दो काम साथ ही लगे रहे। यद्यपि सवेरे और सन्ध्या को टहलना तो अवश्य होता था, तो भी भोजन और विश्राम में बाधा अवश्य पड़ती थी। जब कभी मैं भोजन में अधिक विलम्ब हो जाने की शिकायत करती, तो आप कहते—'चलो, उठो, हमें तो इस बात का ध्यान ही नहीं रहता कि भोजन में अधिक विलम्ब होने के कारण,

कोमल स्त्रियों को पित्त का जोर बढ़ जाता है।' कभी कभी आप कहते—'हमारे आसरे तुम लोग भूखी क्यों रहती हो? यदि किसी दिन हमें देर हो जाय, तो तुम खा लिया करो। यदि इतनी स्वतन्त्रता भी न हुई तो रानी का राज्य किस काम का रहा।'

एक दिन दोपहर को ११॥ बजे आप टहल कर लौटे। उस समय पसीने से सारे कपड़े तर हो रहे थे। धूप के कारण चेहरा तमतमा उठा था। मैंने दो एक बार पूछा भी, पर आप ने कुछ उत्तर न दिया; केवल मेरे मुंह की ओर देखते रहे। मैं ने समझ लिया कि चित्त ठिकाने नहीं है। मेरा जी बैठ गया और आप ही आप मन में प्रश्न उठा—'आज यह एकदम नई बात क्यों हो रही है? मैं ने ब्राह्मण को चटपट गर्म दूध लाने के लिए कहा और धीरे २ पैर दबाने आरम्भ किये। दस मिनट बाद आप ने लड़के को डाक लाने के लिए कहा। उस में एक पत्र ननद का था जिस में दूर के ,रिश्ते के एक विद्यार्थी के प्लेग से मरने का समाचार था। लड़के ने वह पत्र दो तीन बार पढ़ा परन्तु भाग्यवश उस का तात्पर्य्य उस समय आप की समझ में न आया। आप ने दो बार उससे साफ २ पढ़ने के लिए कहा। अन्त में मैंने उसे इशारे से वहां से हटा दिया।

उस के चले जाने पर मैंने आप से थोड़ी देर विश्राम करने के लिये कहा। आप ने मेरी बात तो नहीं समझी, परन्तु थकावट के कारण चुपचाप कोच पर अवश्य पड़ गये। थोड़ी देर बाद नींद आने पर मैं ने देखा, पसीना बहुत हो रहा था, और चहरे की तमतमाहट वैसी ही थी। साढ़े बारह बजे मैं ने भोजन के लिए उठाया। मना करने पर भी आप ने स्नान किया, और भोजन पर जा बैठे। तीन चार ग्रास खाते ही सरदी लगने लगी। आप हाथ धो कर बिछौने पर जा लेटे। बहुत तेज बुखार चढ़ आया। मेरा सन्देह भी दृढ़ हो गया कि अधिक गरमी लगने का यह फल है।

मैंने चट डाक्टर को बुलाया और अधिक मात्रा में ब्रोमाइड देने और विश्राम करने की सलाह दी। मैं ने डाक्टर से आप की वास्तविक दशा न कहने के लिए कहा। मेरी सम्मति के अनुसार उस ने कह दिया— 'सरदी का बुखार है। मैं डायफोरेटिक भेजता हूं। आप दो एक दिन बिछौने पर ही विश्राम करें।' रोज डाय-फोरेटिक (पसीना लाने वाली दवा) के बहाने ४५ से ५० ग्रेन तक ब्रोमाइड दिया जाने लगा, और पांच छः दिन में आप की तबीअत ठीक हो चली। १५ दिन में तबी-अत ठीक हो गई तो भी स्मरणशक्ति ठिकाने पर न

आई। आप जब पत्र लिखाने बैठते, तो एक पत्र का विषय दूसरे पत्र में दूसरे का तीसरे में लिखा देते। इस लिए पत्र लिखने वाले लड़के से मैं ने कह दिया—'तुम आज्ञानुसार अक्षरशः पत्र लिखते जाया करो और अन्त में सब पत्र मुझे दिखा लिया करो। लिखते समय बीच में कुछ पूछा न करो।' क्योंकि मुझे भय था कि बीच में पूछने से, अपनी भूल मालूम होने पर, कदाचित् आप के हृदय पर किसी प्रकार का प्रभाव हो। आठ सात दिन में यह बात भी जाती रही और बहुत चेष्टा करने पर भाग्यवशात् मुझे और कुछ दिनों के सहवास का लाभ मिल गया।

इसी वर्ष से आप को सांसारिक बातों से उदासीनता होने लगी। यद्यपि आप सब काम बराबर करते थे, तो भी न तो उन में मन लगता था और न उन पर ध्यान जमता था। हां यह बात बहुत विचार पूर्वक देखने वाले लोग ही समझ सकते थे। प्रायः पारमार्थिक चिन्तन में मन निमग्न रहता था। सदा छपने वाले समाचार पत्रों के राजकीय, सामाजिक और औद्योगिक लेखों पर भी पहले के समान लक्ष्य नहीं था। पुस्तक या अखबार कभी २ हाथ में ही रह जाते, और मन दूसरे विचारों में निमग्न हो जाता। हास्य और विनोद

भी कम हो गया और भोजन नियमबद्ध होने लगा। यदि उस सम्बन्ध में मैं कुछ पूछती भी तो कुछ उत्तर न मिलता।

द्राक्ष (दाख) आप को बहुत पसंद थी। एक दिन भोजनोपरान्त मैंने दस बारह बढ़िया काली द्राक्षें दीं, जिन में से आप ने आधी खाईं और बाकी छोड़ दी। शेष द्राक्षें खाने का आग्रह करने पर कहा—'तुम चाहती हो कि हम खूब खायँ, खूब पीएँ। परन्तु अधिक खाने से क्या कभी जिह्वा की तृप्ति होती है? उलटी लालसा और बढ़ती है। सब लोगों को इन विषयों में नियमित रहना चाहिए।'

यहां तक कि आप चाय के भी गिनती के घूंट पीने लग गये। भोजन के अच्छे २ पदार्थ आप थोड़ा खा कर शेष छोड़ देते। मैं पूछती—'क्या यह चीज अच्छी नहीं बनी?' आप कहते—'यदि तुम ने बनाई है, तब तो अवश्य अच्छी बनी है। परन्तु अच्छी होने का यह अर्थ नहीं है कि वह बहुत खा ली जाय। भोजन का भी कुछ परिमाण होना चाहिए।'

एक बार पूना से नारायण भाई दाण्डेकर ने, अपने बाग के अपने लगाये हुए पेड़ों के कुछ आम भेजे, और आप से दो चार आम खाने की प्रार्थना की। उन में से

एक आम चीर कर मैंने आपकी रकाबी में रखा। आपने केवल एक फाक खाकर बहुत तारीफ कर के कहा—'आम बहुत अच्छा है; तुम भी खाओ, और सब लोगों को थोड़ा थोड़ा दो।' मैंने कहा आजकल तो शरीर भी ठीक है। एक मित्र के यहां से आया हुआ, ऐसा अच्छा आम; परन्तु आपने पूरा एक भी न खाया। आपने कहा—'आम अच्छा था, इसीलिए तो मैं ने उसे छोड़ दिया। तुम भी खाओ और लड़कों को भी दो। मैं और भी दो एक फाक खा लेता। परन्तु आज मैंने जीभ की परीक्षा ली है। इस पर मुझे एक बात याद आगई है। बचपन में जब हम लोग बम्बई में पढ़ते थे, तो फणस-वाड़ी में दिमेटे की चाल में रहते थे। हमारे बगलवाले कमरे में सायदेव नामक एक मित्र और उनकी माता रहती थीं। वे लोग पहले बहुत सम्पन्न थे, परन्तु अब वह समय न रहा था। सायदेव को स्कालरशिप के जो २५)—३०) मिलते थे, उन्हीं में उनका निर्वाह होता था। माता के ये दिन बड़ी कठिनता से बीतते थे। कभी कभी जब लड़का तरकारी न लाता, तो वह हम लोगों को सुना कर कहतीं—'मैं इस जीभ को कितना समझाती हूं कि सात आठ तरकारियों, चटनियों, घी, खीर, और मठे के दिन अब गये, परन्तु तो भी बिना

चार छः चीजें किये यह मानती ही नहीं। और इस लड़के को तरकारी तक लाने में अड़चल है। बिना तरकारी के इसका काम तो चल जाता है, परन्तु मेरा नहीं चलता।' तात्पर्य्य यह कि यदि जीभ को अच्छी २ चीजों की आदत लगा दी जाय, और दिन अनुकूल न हों तो बड़ी कठिनता होती है। ज्यों ज्यों मनुष्य बड़ा और समझदार होता जाय, त्यों त्यों, उसे मन में से पशुवृत्ति कम करने और दैवी गुण बढ़ाने की आदत डालनी चाहिए। अच्छी बातों के साधन में बहुत कष्ट होता है; उसे सहन करने के लिए यम नियमों का थोड़ा बहुत अवलम्बन करना चाहिए।' लड़कियों को दिखलाने के लिए स्त्रियां चातुर्मास का नियम करती हैं। परन्तु ऐसे नियमों के लिए निश्चित दिन और समय की आवश्यकता नही है। ज्यों ही ऐसा विचार मन में आवे, त्यों ही बिना मुंह से कहे, उसका साधन करना चाहिए। जिस काम को रोज थोड़ा थोड़ा करने का निश्चय विचार किया जाय, वह जल्दी साध्य होता है। दवी गुण बढ़ाना और मन को उन्नत करना सब के लिए कल्याणप्रद है। ऐसी बातें दूसरों को दिखलाने या कहने के लिए नहीं हैं। रात को सोते समय अपने मन में इस बात का विचार करना चाहिए कि आज हमने

कौन कौन से अच्छे और बुरे काम किये। अच्छे कामों को बढ़ाने की ओर मन की प्रवृत्ति रखनी चाहिए और बुरे कामों को कम करने का दृढ़ निश्चय कर के ईश्वर से उस में सहायता माँगनी चाहिए। आरम्भ में इन बातों में मन नहीं लगता। परन्तु निश्चय पूर्वक ऐसी आदत डालने से, आगे चल कर ये बातें सबको रुचने लगती हैं। जब हम अपने आपको ईश्वर का अंश बतलाते हैं, तो क्या दिन पर दिन उस के गुण हम में नहीं आते? जो लोग अधिकारी और भाग्यवान् होते हैं, वे कठिन यम नियमों का पालन और योगसाधन करते हैं; परन्तु हमारा उतना भाग्य नहीं। हम लोग हजारों व्यवसायों में फँसे हुए हैं; तिस पर कानों से बहरे और आखो से अंधे हैं; इसलिए यदि उन लोगों के बराबर हम साधन न कर सकें, तो भी अपने अल्प सामर्थ्यानुसार इस प्रकार की छोटी मोटी बातें तो करनी ही चाहिए।' मैंने कहा—'ये बातें सुन कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। तो भी नियमानुसार आपने और बातों में मेरा प्रश्न उड़ा दिया। ख़ैर, मैं समझ गई कि चाय के घूंटो की तरह भोजन भी परिमित हो गया। आप इस में अधिक ध्यान रखा करें। खाना तो आपके ही अधिकार में है न?'

आपने कहा—'अच्छा हम एक बात पूछते हैं। कभी हम भी इस बात की जांच करते हैं कि तुम लोग क्या खाती हो, क्या पीती हो, कितनी देर सोती हो या क्या करती हो? तब फिर तुम लोग पुरुषों की इन बातों की जांच क्यों करती हो? पहली स्त्री कभी इन बातों पर ध्यान नहीं देती थी परन्तु तुम उस से बिलकुल विपरीत हो। हमारे एक एक काम पर तुम जासूस की तरह दृष्टि रखती हो।'

दूसरे दिन मैं मन ही मन आप के भोजन के ग्रास गिनने लगी। आप कभी ३२ ग्रास से अधिक न खाते थे।

मई सन् १९०० मे हम लोग महाबलेश्वर न जा कर लुनौली गये थे। जून में दो एक दिन पानी बरसा था। उसी अवसर पर ठण्ड में खुली हवा मे बैठने के कारण आप को 'किडनी' की बीमारी हो गई। बम्बई आ कर इलाज कराने पर वह कम हो गई परन्तु जून के अन्त में एक घटना के कारण वह फिर बढ़ गई। उस दिन इतवार था। सवेरे आप ने कोर्ट का बहुत सा काम किया था। दोपहर को भोजन के बाद फिर काम पर बैठे और मुझ से कह दिया कि आज बहुत आवश्यक कार्य्य होने के कारण मैं किसी से भेट न करूंगा। तीन बजे मैं ने चाय लाने की आज्ञा मांगी तो कहा—'इस समय बिल-

कुछ न बोलो। काम खतम होने पर मैं बुला लूंगा।'
लगभग एक घण्टे बाद आप ने चाय मांगी और हाथ मुंह धो कर और कपड़े पहन कर टहलने जाने की तैयारी की। इतने में प्रार्थनासमाज का सिपाही आ कर बोला—'सेक्रेटरी साहब ने कहा है कि आज उपासना आप ही करावें।' मुझे कुछ क्रोध आया और मैं ने कहा—कहा है या हुकुम दिया है? चिट्ठी तक न भेजी और सन्देसा भेजा तो पांच बजे।' सिपाही तो चुप रहा पर आप ने कहा—'इस में इस का क्या दोष है? इस का काम सन्देसा पहुंचाने का है। शिवराम, तुम जाओ और कह दो कि हम आते हैं।' आप ने मुझ से प्रार्थना-संगीत की पुस्तक मांगी। इधर आप ने चाय पी और जलपान किया। मैं ने पूछा—'आज कौन सा काम ऐसा आ गया था जिस के लिए लगातार पांच छः घण्टे बैठना पड़ा।' आप ने कहा—"समाज चलते समय गाड़ी में बतलावेंगे।" गाड़ी में थोड़ी देर तक प्रार्थना-संगीत देख कर कहा—'आज का मुकद्दमा बड़े महत्व का है। हम जजों में पांच छः दिन तक विचार होता रहा तो भी सब की राय नहीं मिली। कल उस का फैसला सुनाना होगा और मेरे जोड़ीदार जज ने कल सन्ध्या को पत्र भेज कर मुझ को ही फैसला लिखने के लिए कहा है इसीलिए आज

सवेरे और सन्ध्या को बहुत देर तक बैठना पड़ा। मुक़-द्दमा खून का है और उस में धारवाड़ की तरफ के ६ ब्रा-ह्मण अभियुक्त हैं।" इतने में हम लोग प्रार्थना समाज में पहुंचे। दिन भर की थकावट होने पर भी उस दिन की प्रार्थना और उपासना नियमानुसार प्रेम और भक्ति पूर्ण हुई। वहां से लौटने पर गाड़ी में ही फिर तबीअत ख-राब हो गई। रात को बुखार हो आया और नींद बिल-कुल नहीं आई। दूसरे दिन आप ने कहा—'जहां ज़रासा आलस किया और रोग बढ़ा। दोपहर को फैसला लि-खते समय पैखाना मालूम हुआ परन्तु विचार किया कि इसे समाप्त कर के उठें। उसी में चार घण्टे लग गये और यह कष्ट उठाना पड़ा।" मैं ने कहा—'विश्राम तो आप लेते ही नहीं। काम पर काम करते चले जाते हैं। मन तो वश में हो जाता है परन्तु उस के कारण शरीर को कष्ट भोगना पड़ता है।' आप ने कहा—'यदि तुम्हारे थोड़े से श्रम से किसी के प्राण बच सकें तो तुम इतना कष्ट सहने के लिए तैयार होगी या नहीं?' मैं ने कहा—'मैं ही क्यों, सभी लोग प्रसन्नता से सहने के लिए तैयार होंगे।' आप ने कहा—'बीमार होने का किसी को वि-चार नहीं होता। परसों के मुक़द्दमे में मेरे जोड़ीदार जज की फांसी की राय थी परन्तु मेरा मत इस से विरुद्ध था।

इसीलिए कल का फैसला लिखने में अधिक समय और श्रम लगा। यदि मैं बीच में ही उठ जाता तो मन के विचार तितर बितर हो जाते और उन्हें पुनः एकत्र करने में कठिनता होती।

यद्यपि रात को बुखार आया था, तो भी भोजन करके आप कोर्ट गये। सन्ध्या समय घर आकर आप ने कहा —'आज दो आदमियों की जान बची। उनको फांसी का हुकम हुआ था, पर अन्त में कालेपानी की सज़ा दी गई।

जून मास में प्रायः आप बीमार ही रहे। जुलाई में २० तारीख़ तक तो तबीअत कुछ अच्छी रही; परन्तु २० की रातको फिर पेट का दर्द आरम्भ हुआ। दूसरे दिन ही आप ने कोर्ट से एक मास की छुट्टी ली, और हम लोग डाक्टर की राय से समुद्र किनारे रहने के लिए बन्दर पर चले गये परन्तु यहां आप को एक और नई बीमारी होगई। रोज रात को दस से साढ़े दस बजे तक आप के हाथ पैर एकदम बेकाम हो जाते, और अन्दर से नसें मानो झटका देती थीं; छाती बँध सी जाती थी। उस के कारण १०—१५ मिनट आप बहुत बेचैन रहते। कोई उग्र वास लेने, और जंभाई या डकार आने पर, इस में कमी हो जाती और नींद आ

जाती। फिर दूसरे दिन रात के दस बजे तक इस का नाम भी न रहता, परन्तु इस के कारण आप के नित्यं-क्रम या भोजनादि में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। छुट्टी समाप्त होने पर अच्छे हो कर, आपने फिर कोर्ट जाना आरम्भ कर दिया। अब तक हम लोगों को इस नई बीमारी का अधिक भय नहीं था, परन्तु अगस्त सन् १९०० से इसने जो रूप धारण किया, वह अन्त तक बना रहा। अब आप को भी इस बीमारी की चिन्ता ने आ घेरा। भिन्न भिन्न समय पर रोज दो तीन डाक्टर आते और चिकित्सा करते थे। आप उन से पूछते—'इन दवाओं का कुछ परिणाम तो होता ही नहीं। इसलिए आप लोग दोनों तीनों मिल कर, परस्पर विचार कर निदान करें, और तब चिकित्सा में हाथ लगावें।' तद-नुसार तीनों के मत से भी एक मास तक दवा खाई परन्तु उसका भी कुछ परिणाम न हुआ। इसलिए आप की चिन्ता बढ़ी, और धीरे २ सांसारिक कामों से और भी अधिक उदासीनता हो चली। पहले कोर्ट के अति-रिक्त शेष समय में आप पुस्तकें सुना करते थे, परन्तु अब वृत्ति बदलती हुई दिखाई पड़ने लगी। यदि पुस्तक पढ़ने वाला लड़का कोई भूल भी करता तो आप उस ओर ध्यान भी न देते। गृहस्थी के सम्बन्ध में यदि कोई

बात पूछी जाती तो आप उत्तर देते—'इन बातों के लिए मुझे कष्ट मत दो। यह काम तुम्हारे हैं, तुम्हीं जानो।'

---

[२२]

सितम्बर सन् १९००।

अगस्त में आपकी हाथ पैर ऐंठने वाली नई बीमारी की चिकित्सा होती ही रही। उन दिनों डाक्टर ने सर्वाङ्ग में मलने के लिए एक विशेष तेल बतलाया था; जिसे मैं या ननद रात के समय मला करती थीं। चिरञ्जीव लखू, तारा, नानू और शान्ता पास ही खेला करतीं। कभी कभी सास जी भी वहीं आ बैठतीं थीं। उस समय आप घर का कुल हाल चाल पूछा करते, और बीच में विनोद भी करते जाते। कभी कभी लड़कियां और ननद बारी बारी से गातीं। ननद का कण्ठ बहुत मधुर था और उन्हें भक्तिसम्बन्धी प्रेमपूर्ण गान, मीराबाई और कबीर के पद, आदि बहुत से याद थे। उन के गान में नवीन शिक्षा का संस्कार नहीं था, तो भी पुराने ढंग के गान वह बहुत अच्छी तरह से गाती थीं। उनके कुछ गान आपको भी बहुत पसन्द थे, और आप ननद को वही गान सुनाने के लिए कहा करते थे। चारों बालकों में से सब से छोटी लड़की शान्ता (आबा

भावीजी की लड़की) सब को बहुत प्रिय थी। विशेषतः आप उसे बहुत ही चाहते थे, और वह भी प्रायः आप के पास ही रहा करती थी। वह सब की नक़ल करती और खूब हँसाती थी। जहां आप उस से एक बार औरों की बोली सुनाने के लिए कहते, तहा वह बजावा ब्राह्मण से ले कर सास जी तक, घर के सब लोगों के बोलने की बिलकुल ठीक नक़ल उतारती जिस से सब लोग खूब हँसते। वह शेष तीन लड़कियों की नक़ल करके उन्हें भी चिढ़ाती।

इसी प्रकार रात को भोजनोपरान्त दस साढ़े दस बजे तक विनोद और गान में समय बीतता। डाक्टर ने कह दिया था कि दस और साढ़े दस के बीच में छाती में जो विकार होता है, वह 'आर्गनिक' नहीं बल्कि 'नर्वसनेस' के कारण होता है इसलिए डाक्टर की सम्मति से हम सब लोग उस समय मिल कर हास्यविनोद में आप के मन बहलाने की चेष्टा किया करते थे परन्तु इतना होने पर भी एक दिन भी आप की उस बीमारी का समय नहीं टला। दस साढ़े दस बजे छाती बन्ध जाती और हाथ पैर ऐंठने लगते। उग्रश्वास लेने पर कुछ मिनटों के बाद जंभाई या डकार आती और तब यह विकार मिटता। इस के कारण शरीर बहुत शिथिल हो

जाता था और तत्काल नींद आ जाती थी।

आरम्भ से ही मेरी इच्छा थी कि इस पुस्तक में अपने विषय में अधिकांश बातें न लिखूं परन्तु संसार में स्त्रियों का सम्बन्ध ऐसा है कि उन का विवरण छोड़ते नहीं बनता। जिस अवसर पर किसी प्रकार काम नहीं चल सका वहीं आप के मन की स्थिति समझाने के लिए मेरा भी सम्बन्ध आ गया है। इन दिनों मेरी पुरानी बीमारी भी आरम्भ हो चली थी और यह निश्चय नहीं था कि कब वह उभर आवेगी और उस का जोर बढ़ जायगा। इधर आप की बीमारी के कारण मुझे आठ दस दिन बिलकुल खड़ा रहना पड़ा था और सोना न मिला था इसलिए मेरी १८–१९ बरस की पुरानी बीमारी उभर आई। मिच वेन्सन ने मुझे देखकर कहा–'यह बीमारी बहुत पुरानी है। बिना ऑपरेशन के अच्छी न होगी।' इस पर आपने कहा–'अभी आप दवा करती चलें। जब बिना ऑपरेशन के बिलकुल काम न चलेगा, तो देखा जायगा।' मिस वेन्सन ने मुझे ऊपर ही रहने, और सीढ़ी न चढ़ने उतरने की ताकीद की, मैं ने भी तदनुसार ही किया। पांच छः दिन बाद मेरी तबीअत कुछ अच्छी होने पर मैं आप को तेल लगाने गई तो आप ने कहा—'तुम चुपचाप बैठ कर अपनी तबीअत संभालो

नहीं तो तुम्हें कष्ट और चिन्ता होगी। मुझे बहुत दुःख हुआ। मैंने सोचा जिस समय आप बीमार हैं, उसी समय मेरी तबीअत भी खराब हो गई। मेरे इस प्रकार जीवित रहने से लाभ ही क्या हुआ? आपरेशन में केवल जान का ही भय है। यदि मैं अच्छी होगई तो अपने हाथों आप की सेवा कर के अपना जीवन सार्थक करूंगी और नहीं तो जीवित रह कर चुपचाप बैठे २ खेद करने की अपेक्षा मर जाना ही अधिक उत्तम है।

इस पर मैंने ननद को अपने विचार बतला कर आपरेशन के सम्बन्ध में उन की सम्मति ली। उन्होंने कहा—'इस में अधिक भय और चिन्ता भैया को ही है। इसलिए बीमारी की दशा में उन्हें तुम्हारी ओर से और अधिक चिन्तित करना ठीक नहीं है।' यह सुन कर मैं चुप तो हो रही, परन्तु मेरे मनकी घबराहट कम न हुई। इसी चिन्ता में मुझे उस रात को नींद भी न आई।

दूसरे दिन आप ग्यारह बजे नियमानुसार कोर्ट गये। बारह बजे मुझे देखने मिस बेन्सन आई। उसी समय मेरे हाथ पैर फूलने लगे; यहां तक कि अन्त में चूड़ियां तोड़ कर निकालनी पड़ीं। अरेबियन नाइट्स की पत्थर की पुतली के समान मेरा कमर से नीचे का

अंग पत्थर हो गया। मिस बेन्सन ने मेरी बीमारी की चिट्ठी लिख कर हाईकोर्ट भेजी। आप दो एक डाक्टरों को साथ ले कर घर आये, परन्तु आप के आने से पूर्व ही मेरी तबीअत संभलने पर तीन बजे मिस बेन्सन चली गई थी। डाक्टरो ने भी यही सम्मति दी—'आपरेशन करालें तो ठीक हो, नहीं तो धनुर्वात हो जाने का भय है।' आपने मिस बेन्सन को पत्र लिखा—'कल सवेरे नौ बजे आप डाक्टर डिमक तथा और एक अनुभवी डाक्टर को लेकर यहां आवें, तो सब की सम्मति से कर्त्तव्य निश्चित किया जाय।' रात को भोजन के समय तक आप मेरे पलंग के पास ही मेरा हाथ अपने हाथ में लिए बैठे रहे। मै बातचीत करके आपकी चिन्ता कम किया चाहती परन्तु आप मेरे प्रश्नो को 'हां, ना' से ही समाप्त कर देते। मैंने बोलने चालने के लिए शान्ता को बुलाया पर आपने चुपचाप पड़े रह कर विश्राम करने के लिए कहा।' पहले मुझे भोजन करा के तब आप भोजन करने गये, और फिर तुरन्त ही मेरे पास आ बैठे। मैंने समझ लिया कि जब तक मुझे नींद न आवेगी, तब तक आप मेरे पास से न उठेंगे इसलिए मैं चुपचाप पड़ रही। आध घण्टे में मैं सो गई और आप भी उठ कर दीवानखाने में चले गये।

जिस हाल में मैं सोई थी, उसमें बीचमें लकड़ी का एक परदा था, और उसकी दूसरी ओर आपका पलंग भी था। उस दिन रात को न तो आप ही भली भांति सोए और न मैं ही सोई। दूसरे दिन ठीक समय पर दो डाक्टरों को साथ लेकर मिस वेन्सन आईं। मुझे सब लोग देख कर, विचार करने के लिए बाहर चले गये। उन लोगों के चले जाने पर आप को उद्विग्न और उदास देख कर मैंने समझ लिया कि आपरेशन करना निश्चय हो गया। सन्ध्या को कोर्ट से लौट कर आपने मुझ से कहा—'क्या आपरेशन कराना ही होगा? डाक्टर भी कुछ तसल्ली नहीं देते इसलिए आपरेशन कराने पर मन नहीं जमता; भय होता है।' उस समय आप बहुत चिन्तित हो रहे थे, इसलिए मैंने दृढ़ होकर कहा—'आपरेशन में हानि ही क्या है? आप न देख सकेंगे, इसलिए मन दृढ़ करके दीवानखाने में बैठे रहें। आप व्यर्थ चिन्ता न करें, मुझे कोई भय नहीं है। यदि मैं कुछ काम करने के योग्य हो जाऊं, तभी मेरा जीना सार्थक है। बड़े घर की स्त्रियों की तरह चुपचाप पड़े रहना मुझे पसन्द नहीं।' आपने कहा—'यह पागलपने की बातें छोड़ो। व्यर्थ हठ न करो। दूसरे के मन की स्थिति भी कुछ समझा करो। यदि तुम अपने हाथ से कोई काम

न कर सकोगी, तो भी दूर से देख कर सब की व्यवस्था तो कर सकोगी। तुम लिख पढ़ तो सकोगी ही। दो आदमी कुरसी पर बैठा कर नीचे उतार देंगे, तो गाड़ी पर सवार होकर हवा भी खा आओगी। व्यर्थ आग्रह कर के अपना जीवन खतरे में डालना ठीक नहीं है।' आपके मन की स्थिति समझ कर मेरी आंखो में पानी भर आया। इतने में मिस वेन्सन आईं। आपरेशन होना निश्चय हो ही चुका था। उन्होंने मुझे पीने के लिए दवा दी और रात को भोजन न करने के लिए कहा। मिस के चले जाने पर आप फिर मेरे पास आ बैठे। उस दिन रात के ११ बज गये, तो भी आपकी बीमारी का दौरा नहीं हुआ। आज हम लोगो को डाक्टरों के कथन की सत्यता प्रतीत हो गई। उस रात को हम लोगों को निद्रा नहीं आई। रात भर सैकड़ों विचार मेरे मन में उठते रहे। मैं सोचती—यदि मुझे कुछ हो गया तो आपकी सेवा का प्रबन्ध कौन करेगा। तो भी यदि आपके सामने ही मेरा शरीरान्त होजाय तो इस में बुराई ही क्या है। मुझ में कोई गुण न होने पर भी ईश्वर ने कृपा कर मुझे आपके चरणो तक पहुंचाने की कृपा की है, और मुझे विश्वास है कि मेरा इस जन्म का सम्बन्ध भविष्य जीवन में भी बना रहेगा।

एक दिन पूर्व आपने मुझ से कहा था–'दूसरे के मन की स्थिति भी कुछ समझा करो।' जब मैंने इस शुद्ध प्रेम और अपने विपरीत विचारों की तुलना की, तो मैंने अपने आप को तिरस्कृत किया। अपने बाद आपके मन की होनेवाली स्थिति का विचार कर के मैं विह्वल होगई। मैंने सोचा कि यदि ईश्वर को यही स्वीकार हो कि हम दोनों में से किसी एक को दूसरे के लिए दुःख हो तो आपके लिए मैं ही दुःख भोग लूं, परन्तु मेरे लिए आपको दुःख न हो। आपका कोमल हृदय मेरा दुःख सहन न कर सकेगा। स्त्रियों का सच्चा व्रत यही है कि उन के कारण पति को किसी प्रकार का कष्ट न हो। मरने तक स्त्रियों की ऐसी ही इच्छा रहनी चाहिए, और उन्हें सब प्रकार इसी के लिए प्रयत्न करना चाहिए। स्त्रियों का मुख्य कर्त्तव्य या धर्म्म यही है। जो स्त्रियां पति का अन्तःकरण नहीं पहचानती और जिन्हें उस निस्सीम प्रेम का मूल्य मालूम नहीं, वे यदि–'आप डूबें तो जग डूबा' सा समझ लें, तो उन का समाधान किस प्रकार हो?' यह सब सोच कर मैं ईश्वरचिन्तन करने लगी।

सवेरे आप फिर मेरे पास आ बैठे। उस समय शायद आपने ठण्डी सांसों द्वारा अपने हार्दिक विचार

प्रकट न करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। परन्तु आप आध घण्टे से अधिक उस दशा में न रह सके, और उठ कर बाहर चले गये। मुझे यह बात अच्छी न मालूम हुई। क्योंकि आज के दिन मैं ने शान्त रहने का जो विचार कर लिया था वह दृढ़ न रह सका। आप की अनिच्छा होने पर भी मैं ने आपरेशन का हठ किया था, इस विचार से मेरा मन आप ही आप चिंतित हो उठा।

प्रातर्विधि समाप्त कर के आप फिर मेरे पास आ बैठे। परन्तु परस्पर एक दूसरे को देखने के अतिरिक्त किसी प्रकार की बातचीत नहीं हुई। इतने में पूना के राघोपन्त नगरकर के आने का समाचार मिला। आप उठ कर बाहर चले गये। नगरकर महाशय को ननद ने आपरेशन के समय आप के पास रहने के लिए बुलाया था। दस बजे दो स्त्रियां आपरेशन की तैयारी करने आईं। उन से मालूम हुआ कि मिस बेन्सन एक और डाक्टरनी को ले कर बारह बजे आवेंगीं। जब आप लोग भोजन करने गये, तो मिस बेन्सन आईं। मैं ने उन से चटपट आपरेशन कर डालने की प्रार्थना की। बिना आप की आज्ञा पाये, वह आपरेशन करने में हिचकीं, परन्तु मेरे बहुत आग्रह करने पर मुझे मेज पर

लिटा कर क्लोरोफार्म की तैयारी की। मैं मन ही मन में आप को तथा ईश्वर को नमस्कार कर के लेट गई। क्लोरोफार्म दिया गया और मैं बेसुध हो गई। कोई पौने दो घण्टे बाद आपरेशन समाप्त कर के चारों स्त्रियों ने मुझे पलंग पर लिटा दिया। होश आने पर मैं ने आप को बुलाने के लिये कहा। आप ने आ कर कहा—'अब मत डरो, आपरेशन हो गया। मैं कहीं न जा कर यहीं बैठूंगा।' बहुत देर बाद मुझे अच्छी तरह होश हुआ। मेरे दूध पी चुकने पर आप दीवानखाने में गये। इस के बाद तीन सप्ताह तक मैं बिछौने पर ही पड़ी रही, क्योंकि मिस ने कुरसी पर बैठने के लिए मना किया था।

गत जुलाई से रात के दस बजे आप को स्पज्म का (Sposm) दौरा होता था, वह मेरे आपरेशन के दिन से तीन सप्ताह तक बिलकुल न हुआ, जिस से सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। इस के बाद दीवाली की छुट्टी में आप मुझे माथरान ले जाना चाहते थे, परन्तु मिस बेन्सन ने जाने की आज्ञा नहीं दी। सब सामान पहले ही भेजा जा चुका था, इसलिए मैंने आप से चले जाने, तथा अपने दस बारह दिन बाद आने की बात कही। तदनुसार आप माथरान चले गये। तीन चार दिन बाद वहां से

समाचार आया कि आप के ऐंठन (Sposm) का दौरा फिर आरम्भ हो गया। हम लोगों को बहुत चिन्ता हुई। मैं ने मिस वेन्सन से सब हाल कह कर अपने जाने का दृढ़ विचार जतलाया और कहा कि यदि मेरे अच्छे होने में कोई कसर भी रह जाय तो कुछ चिन्ता की बात नहीं है। ननद तथा सास जी की सम्मति ले कर मैं दूसरे ही दिन दोनों बालकों को साथ ले कर माथरान चली गई। उस समय नानू पांच छः बरस का था और सखू ग्यारह बरस की थी। उस समय सखू अलेक्ज़ेण्ड्रा हाई स्कूल में तीसरी कक्षा में पढ़ती थी। आप उस की बुद्धि की बहुत प्रशंसा किया करते थे। यदि मैं उस पर बिगड़ती तो आप उसके गरीब स्वभाव के कारण उस का पक्ष लेते। नानू का स्वभाव ढीठ, निश्चयी और अभिमानी था। उसे एक बार की सुनी हुई बात भी याद रहती थी। यदि किसी दूसरे लड़के के पास कोई चीज अच्छी होती और नानू के पास खराब तो वह उलटा अपनी चीज को अच्छी बतला कर सबों को चिढ़ाता था। इसलिए इन दोनो के स्वभाव से आप का मनोविनोद होने लगा। इस के अतिरिक्त बम्बई से आई हुई पुस्तकें भी आप सुना करते थे। इस प्रकार छुट्टीके दिन समाप्त कर के हम लोग बम्बई लौट आये।

बम्बई आ कर आप की बीमारी फिर कुछ बढ़ गई । आप ने दोनो डाक्टरो से अलग२ अपनी बीमारी का नाम पूछा, परन्तु उन्होंने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया । इसलिए अपनी बीमारी का नाम जानने के लिए आप ने मेडिकल कालेज से कुछ पुस्तकें मंगा कर पढ़ डालीं । एक दिन सन्ध्या समय आप ने मुझे बुला कर कहा—'कोई ३५ वर्ष हुए, विष्णुपन्त रानडे नामक हमारे एक मित्र यहां रहते थे । उन का स्वभाव शान्त, उदार और बहुत अच्छा था । शरीर से भी वह अच्छे और बलवान् थे । उन्हें कोई व्यसन नहीं था । एक बार घोड़े से गिरने के कारण उन्हें 'Angina Pectoris' नामक बीमारी हुई । यद्यपि वे तीन वर्ष बाद तक जीये तो भी उन का जीवन सदा सशंयात्मक ही बना रहा । इसलिए डाक्टरों ने उन्हें किसी प्रकार का श्रम न कर चुपचाप बिछौने पर पड़े२ पढ़ने लिखने से दिल बहलाने की राय दी । इसलिए वे सदा घर में ही रहते, और एक न एक आदमी उन के पास बैठा रहता । इतना होने पर भी एक दिन पैख़ाने के समय ही उन के प्राण निकल गये । इसलिए नहीं कहा जा सकता कि किस समय मनुष्य को क्या हो जायगा ।'

मैं ने आश्चर्य से पूछा—'तो भी इस का मतलब

क्या हुआ ? और इस बात से आप की बीमारी का क्या सम्बन्ध है ?' आपने कहा—'फिर वही पागलो का सा तर्क ! क्या साधारणतः यों हीं कोई बात नहीं कही जाती । अब तो दिन पर दिन तुम से बात करना भी कठिन हुआ जाता है ।' मैं ने कहा—'सब बातों में इस प्रकार निराशा और उदासी दिखलाना मुझे अच्छा नही लगता । सदा ऐसे ही विचारो में फँसे रहने का प्रभाव क्या आप के हृदय पर नहीं होता होगा ? गत दो वर्षों में आप को इतनी बीमारिया हुईं, परन्तु धीरे धीरे सब अच्छी हो गईं । यह बीमारी उन सब से अधिक बढ़ी हुई नहीं है । हा, मन में एक बात बैठ गई है, इसलिए डाक्टर की बात भी ठीक नही मालूम होती ।' आपने कहा—'मन में कौनसी बात बैठ गई है ? आज दोपहर को पुस्तक पढते पढ़ते यह बात याद आई, तो तुम से भी कह दी । आज मैंने अखबार नहीं पढ़े । तुम उन्हें पढ़ लो और भोजन के समय जो बातें उन में बतलाने योग्य हों, हमें बतला देना ।' मैं भी आपका असल मतलब समझ गई और इस बात को यही समाप्त करने के लिए, हाथ में अखबार ले कर दीवानखाने में गई ।

दूसरे दिन जब डाक्टर राव और नायक आये, तो आपने

उन से कहा—'आप लोग दवा देते हैं, परन्तु मेरी बीमारी का निदान ठीक कर के ही औषध की योजना की है? यदि आप लोग बीमारी का नाम न बतलाया चाहें, तो मुझे उस के लिए कुछ अधिक आग्रह नहीं है। अपनी समझ के अनुसार रोग का निदान कर के औषध देना आपके हाथ में है और आप की दी हुई दवा चुपचाप पी लेना हमारे हाथ में है।' मनुष्य औषध' इसीलिए पीता है कि और लोग दवा न पीने और लापरवाही करने की शिकायत न करें।' इतने पर भी डाक्टर राव को चुप देख कर आपने फिर कहा—'यदि आप नाम न बतलावें, तो मैं ही आप को नाम बतलाये देता हूं। क्या मेरी बीमारी का नाम 'Angina Pectoris' नहीं है? पांच छः दिन में बहुत सी पुस्तकें पढ़ने और लक्षणों का मिलान करने से मुझे निश्चय हो गया है कि मेरी बीमारी का नाम यही है। यह बीमारी मेरे एक मित्र को भी हुई थी।' डाक्टर राव कुछ घबड़ा से गये, तो भी सँभल कर बोले—'लक्षण मिला कर उसे आपका 'Angina Pectoris' कहना बहुत ठीक है। तो भी यह बात ठीक नहीं है। आपको कल्पना के कारण ही इस रोग का भास होता है। इस का असल नाम है 'स्यूडो एनजिना पेक्टोरिस' (Seudo Angina Pectoris) है। इसमें रोगी को कल्पनामात्र के

कारण ठीक उसी रोग का भास होता है, और उसके सब लक्षण भी मिलते हैं। तो भी वह वास्तव में नहीं होता है। इस प्रकार के बहुत से रोग हैं, जिनके वास्तव में न होने पर भी रोगी के मन पर उस का बड़ा प्रभाव और परिणाम होता है। यह भी उन्हीं में से एक है; इसे 'Pseudo Angina Pectoris' कहते हैं।'

आपने कहा—'इसमें कुछ 'Pseudo' (असत्य) अवश्य है। यह बीमारी ही 'Pseudo' है और नहीं तो कम से कम मुझे समझाने के लिए आप का प्रयत्न ही 'Pseudo' है।'

---

[२३]

अन्तिम वर्ष—लाहोर की कांग्रेस।

सन् १९०० में तबीअत अच्छी न होने के कारण आप को इस बात की चिन्ता थी कि डाक्टर कांग्रेस में जाने की आज्ञा देंगे या नहीं। तो भी आप की पूरी इच्छा जाने की थी। बीमार होने पर भी सोशल कान-फरेन्स की रिपोर्टें मंगाने, बड़े बड़े पत्र लिखने तथा आये हुए पत्रों के उत्तर देने का काम जारी ही था। भिन्न २ संस्थाओं से आई हुई रिपोर्टों का सारांश तैयार कराने का काम भी हो ही रहा था। अन्त में इन्हीं-

कामों के लिए कई कई घण्टे लगने लगे। कानफरेन्स में पढ़ने के लिए "वशिष्ठ और विश्वामित्र" नामक लेख लिखने के लिए आप को लगातार पांच छः रोज बैठना पड़ा। काम से खाली होने पर आप लाहौर जाने का जिक्र और तैयारी करते। जाने से दो तीन दिन पूर्व आप की बीमारी के कारण मेरा भी साथ जाने का विचार था और मैं इस विषय में आप से निवेदन करने को ही थी कि एक दिन आप ने स्वयं ही कहा—'इस बार तुम्हें भी हमारे साथ चलना होगा।' मैं भी अधिक उत्सुकता से तैयारी में लगी। पहले तो हम ही दोनों आदमियों के जाने का विचार था परन्तु एक दिन रात को सोते समय आप ने कहा—'मेरा विचार सखू को भी साथ ले चलने का है। उस के कपड़े भी बांध लो। उस तरफ सरदी अधिक पड़ती है इसलिए गर्म ओढ़ने अधिक ले लेना'। मैं ने जब नानू को भी ले चलने के लिए कहा तो आप बोले—'साथ में दो ही नौकर हैं। उन में से एक तो उसी के लिए हो जायगा। साथ में तुम्हारा भी बहुत सा समय उसी के लिए व्यर्थ जायगा। सब प्रबन्ध तुम अकेली को ही करना होगा। सखू स्यानी है उस से तुम्हें मदद भी मिलेगी इसीलिए जो मैं कहता हूं उसी के अनुसार तैयारी करो।' दूसरे दिन मैं ने तदनुसार प्रबन्ध

किया परन्तु यह विचार किसी से कहा नहीं ।"

उसी दिन सुबह की गाड़ी से लाहौर जाने के लिए पूना से नगरकर, गोखले, भिड़े आदि पांच छः आदमी आये। दोपहर को आदमी को स्टेशन भेज कर सीट्स रिज़र्व कराई गई और दूसरे दिन सन्ध्या समय जाना निश्चय हुआ । वह सारा दिन काम करने और पूना से आये हुए लोगों से बातचीत करने में बीता । दोपहर को दस पांच मिनट भी विश्राम नहीं किया इसलिए उस रात को 'स्पज़्म' ज़रा ज़ोर से हुआ और अधिक समय तक रहा । अधिक थकावट के कारण डेढ़ घण्टा बीत जाने पर भी नींद नहीं आई । मैं ने रेंडी के पांच सात मुलायम पत्ते संगाये और तालू पर रखे । कनपटी और पैर के तलुवों में घी लगाया । आप ने भी बहुत सोना चाहा परन्तु नींद नहीं आई । एक बजे छाती में दर्द आरम्भ हुआ । नींद न आने पर भी चुपचाप पड़े रहने में अब तक जो विश्रान्ति मिलती थी वह भी अब जाती रही । तकिये के सहारे उठ कर बैठना पड़ा । मैं ने चट चूल्हा जला कर पानी गरम किया और रबर की थैलियों में भर कर सेक आरम्भ किया । सुबह छः बजे दर्द बन्द हुआ तब कहीं जा कर आंख लगी ।

मैं ने सवेरे डाक्टर भालचन्द्र को बुलाया । पूना से

आये हुए लोगों से भी सब हाल कहा। प्रातर्विधि समाप्त कर के आप आठ बजे दीवानखाने में आये। लोगों के तबीअत का हाल पूछने पर कहा—'अह, मुझे तो सदा ऐसा ही होता है इसलिए कहां तक इस का खयाल किया जाय। मुझे कुछ विकार हो गया है उसी के कारण कभी कभी ऐसा होता है।' इतने में डाक्टर भालचन्द्र भी आये। उन्हों ने सब हाल सुन कर कहा—'मेरी सम्मति में इतना बड़ा प्रवास नहीं करना चाहिए। यही नहीं बल्कि मैं साफ कहे देता हूं कि इस बार आप जायँ ही नहीं।' डाक्टर के चले जाने पर आप इन्हीं विचारों में बहुत देर तक सचिन्त बैठे रहे। आप ने गोखले की ओर देखकर पूछा—'अब चलने के विषय में क्या किया जाय? गोखले ने कहा—'तबीअत के सम्बन्ध में हम लोग क्या कह सकेंगे। डाक्टर भाटवडेकर का कहना मानना ही अच्छा है। जो जो काम करने हों मुझे बतलाइये मैं आप के कथनानुसार सब कर लूंगा।' आप ने कहा—'तुम्हीं करो जी। अब यह सब तुम्हीं पर आ पड़ेगा। यदि तुम लोगों का यही विचार हो कि मैं न जाऊं तो मुझे एक तार तो भेज देना चाहिए।'

जाने के लिए सब लोगों के मना करने पर आप ने तार लिखा और सब को दिखलाया। जिस समय

आप ने कहा—'मेरे अठारह वर्ष के जाने में यह खण्ड पड़ रहा है। तो उस समय गला भर आया और आंखों से अश्रुधारा बहने लगी थी।

इस प्रकार लाहौर जाने का विचार रह गया। कानफ्रेन्स में पढ़ने के लिये जो लेख लिखा था, वह गोखले के सपुर्द किया और चिरञ्जीव आबा साहब को उन लोगों के साथ लाहौर भेज दिया।

उसी दिन सन्ध्या समय सब लोग लाहौर चले गये, और हम लोग लुनौली चले आये। वहा पूना के मित्र मिलने के लिए आये। उन लोगों ने आप से पूना में रह कर दवा कराने का बहुत आग्रह किया। आपने कहा—'मैं अभी बम्बई में इलाज कराता हूं। कुछ अच्छा होने पर पूना आने का विचार करूंगा। पाच चार दिन बाद लाहौर से सब लोग लौट आये; और वहां का सब हाल सुना कर दूसरे दिन पूना चले गये। वहा का विवरण सुन कर मन का बोझ कुछ कम सा हो गया।

इस के बाद टाइम्स, एडवोकेट, सोशल रिफार्मर, पंजाबी आदि पत्रों में सब हाल, तथा गोखले और चन्दावरकर के भाषण पढ़ कर दोनों को अपने हाथ से इस आशय के पत्र लिखे—'मुझे यह देख कर बहुत सन्तोष हुआ कि भविष्य में यह भार उठाने के लिए, तुम दोनों

योग्य हो गये हो। इस सम्बन्ध में मुझे जो चिन्ता थी वह अब कम हो गई।'

हम लोग दस दिन लुनौली रहे। इस बीच में छोटा मोटा विकार कुछ न कुछ रोज बढ़ता चला। मन की उदासीनता और भी अधिक हो गई थी। ननद तथा मुझ से बात करते समय आप छै महीने की छुट्टी लेने का विचार जतला कर गृहस्थी का प्रसार और खर्च कम करने के लिए कहते, और इसके बाद पेन्शन लेकर पूना रहने का विचार प्रकट करते। आप की इस प्रकार की विरक्त चित्तवृत्ति देख कर मुझे बहुत दुःख होता; परन्तु मैं उसे प्रकट न करती।

छुट्टी खतम होने पर हम लोग बम्बई लौट आये। ८ तारीख को (जनवरी १९०१) आप ने छः महीने की छुट्टी के लिये दरख्वास्त लिखी और मुझे बुला कर कहा 'आज मैं ने छुट्टी के लिए दरख्वास्त लिखी है और छुट्टी समाप्त होने पर मैं पेन्शन लगा। उस समय पेन्शन के अतिरिक्त तुम्हारी और आमदनी सात आठ सौ रुपये महीने की रहेगी। उस में तुम्हारा पूना और यहां का ख़र्च चल जायगा न ?" मैं ने कहा—'बम्बई में जब तक एक मकान न ले लिया जाय तब तक जरा अड़चन ही है। यहां तीन साढ़े तीन सौ रुपये महीना किराया देना पड़ता है इसलिए यदि पूना से गृहस्थी उठा कर

सब प्रबन्ध यहीं किया जाय तो अच्छा हो।'

आप ने कहा— पूना के लोगों को वहीं रहने दो। उन लोगों को कथा-कीर्त्तन पुराण आदि का वहीं अच्छा सुभीता है। मुझे अब बम्बई में नहीं रहना है। मैं ने यही पूछने के लिए तुम्हें बुलाया है कि इतने में सब खर्च चल जायगा न? मैंने कहा—'क्यो, चलेगा क्यों नही? किसी चीज बिना हमारा काम नहीं रुक सकता। व्यर्थ के खर्च कम कर दिये जायँगे। आपने जिस ढंग पर आज तक हम लोगो को चलाया है, उस के कारण थोड़े में भी हम लोग आराम से गुजारा कर लेगे। यह रकम भी कुछ कम नहीं है तो भी जहा तक शीघ्र हो सके, एक मकान खरीद लेना ही अच्छा होगा। यहां किराये में बहुत अधिक खर्च होता है।' आपने कहा—'मकान खरीदने के विचार में तो मैं भी हूं। पांच छः मकान देखे भी, परन्तु तुम्हें पुराने मकान पसन्द नहीं हैं। अच्छी बस्ती में नया मकान मिले, और तुम लोग पसन्द करो, तो ले लिया जाय।'

इसके बाद आपने छुट्टी की दरख़ास्त भेज दी। दूसरे दिन चीफ जस्टिस का मंजूरी का पत्र आया। उसे पढ़ कर आपने मुझ से कहा—'जो सिपाही और चोबदार हमारी तैनाती में हैं, उन्हें आज कोर्ट में जाकर ग्यारह

मुझे हाजिर होने के लिए कहो। छुट्टी लेने पर सरकारी सिपाही नहीं चाहिएँ।" मैं ने चारों को कुछ इनाम दे कर कोर्ट जाने के लिए कहा। वे लोग बहुत अधिक दुःखित हुए। एक चोबदार ने कहा—'आप दो को भेज दें और दो को तैनाती में रक्खें। छुट्टी लेने पर भी सिपाही साथ में रह सकते हैं। केवल साहब को एक चिट्ठी लिख देनी होगी।' मैं ने कहा—'हाँ, कोर्ट का ऐसा नियम हो सकता है; परन्तु हमारा नियम ऐसा नहीं है। आज तुम लोग जाओ। फिर आवश्यकता पड़ने पर बुलवा लेंगे।"

दीवानखाने में आ कर सब एक एक करके आप के पैरों पर पड़े। चोबदार तो भक्ति के कारण रोने तक लगा। आप भी निश्चल दृष्टि से उस की ओर देखने लगे, परन्तु कुछ बोले नहीं। जाते समय उन लोगों ने कई बार फिर फिर कर हम लोगों की ओर देखा। मेरा हृदय भी भर आया और मैं दूसरी ओर जा कर, अश्रुधारा द्वारा हृदय का भार हलका कर आई। उस समय आप बहुत गम्भीरता पूर्वक कुछ विचार कर रहे थे। आपने मुझे कोच पर बैठने के लिए कह कर एक सिपाही को रखने की आज्ञा दी। मैंने कहा—"खिदमतगार, कोचवान, पहरेवाला सभी तो हैं, और नये सिपाही की

क्या आवश्यकता है?' आपने कहा—'मुझे तो सिपाही की जरूरत नहीं है, परन्तु तुम लोगों को चिरकाल से सिपाही साथ रखने की आदत है। लड़को को भी सिपाही साथ रखने का अभ्यास सा हो गया है। खर्च के लिए संकोच न करके एक सिपाही रख लो तो सब को सुभीता होगा।' इस समय आपकी आवाज कुछ धीमी सी पड़ गई थी, तो भी मैं ने जरा हसते हुए कहा—'जब आपको सिपाही की जरूरत नहीं है, तो हमारा कौनसा काम सिपाही विना रुक सकता है। छः महीने की दिक़्क़त है, फिर तो सिपाही आ ही जायगा।"

आप अपने हृदय का विचार दबाने के लिए शान्ति से बोलने लग गये। उस समय यद्यपि हम दोनों ही परस्पर एक दूसरे को यह जतलाने की मन ही मन बहुत अधिक चेष्टा कर रहे थे, कि हम लोगो को बीमारी का किसी प्रकार भय नही है, और न उस की चिन्ता ही है, तो भी अन्तःकरण की स्थिति नहीं बदलती थी।

भोजन के समय ननद ने कहा—'छुट्टी मंजूर हो गई न? अब विश्राम भी मिलेगा और तबीअत भी अच्छी हो जायगी। अब डाक्टरो के बदले वैद्यों की दवा हो तो अच्छा हो।'

आप ने कहा—'वैद्य क्या और डाक्टर क्या ? कुछ होना चाहिए। परन्तु अब सब सामान पूना भेज दो। गाड़ी घोड़ा आदि पैदल के रास्ते से भेज दो और बाकी आवश्यक चीजें साथ जायगीं।'

दो तीन दिन बाद आपने बंगले के मालिक को एक पत्र लिख दिया कि मैं छः महीने की छुट्टी ले कर बाहर जा रहा हूं; इस महीने के अन्त में तुम्हारा बंगला खाली हो जायगा। उस ने दूसरे ही दिन दरवाजे पर 'To let' की तख्ती लगा दी। हम लोगों को यह बात बहुत बुरी लगी। भोजन के समय जब मैं ने इस का जिक्र किया तो आप ने कहा—'इस में बुराई क्या हुई? जब तुम्हें घर छोड़ना ही है, तो फिर इस में तुम्हारी कौन सी हेटी हो गई? उसे भी तो किरायेदार चाहिए न? इसलिए उस ने तख्ती लगा दी; अपनी ओर से उस ने इस में बुद्धिमत्ता ही की। इस में तुम्हारा क्या गया?' मैं तो चुप हो रही पर ननद ने कहा—'अभी घर वाले को पत्र ही क्यों लिखा? छुट्टी समाप्त होने पर जब पेन्शन लेने का विचार हो तब यह बंगला छोड़ें। छः महीने तक सब सामान इसी में रहे। नहीं तो पीछे बंगला मिलने में कठिनता होगी।'

पहले तो दो एक बार आपने कुछ उत्तर नहीं दिया

परन्तु जब हम लोगों ने कई बार बंगला न छोड़ने की बात कही, तब आप जरा दुःखित हो कर बोले—'यदि मनुष्य न भी बोलना चाहे तो भी तुम लोग उसे 'दिक कर के बुलवाती ही हो। समझ बूझ कर पागलपन क्यों करना? मैं जो कहूं उसे चुपचाप न कर के उस में तर्क करने का क्या प्रयोजन है? हमारी तबीअत का हाल तुम लोग नहीं देखती? क्या तुम लोग समझती हो कि यह छुट्टी समाप्त कर के मैं लौट आऊंगा?' मैंने कहा—'न जाने मन में यह क्या बैठ गया है? सन् १८९७ में इस से भी अधिक तबीअत खराब हो गई थी, परन्तु महाबलेश्वर में तबीअत बिलकुल ठीक हो गई थी। ऐसे विचारों का परिणाम क्या प्रकृति पर नहीं होता? जहां डाक्टर रॉव और भाटवडेकर तक की बात ठीक न जँचे वहां किया किया जाय?'

आप चुपचाप ऊपर चले गये। मैंने ननद से कहा—'इन्हीं विचारों के कारण 'स्पजम' भी अधिक होने लगा है। तो भी यदि महाबलेश्वर या किसी और स्थान पर चलें, कामों का बोझ कम हो, और विश्रान्ति मिले तो फिर तबीअत सभल जाय। कोई बड़ा रोग तो है ही नहीं इसलिए इस में चिन्ता की कोई बात नहीं है। मैं ने एकान्त में सब डाक्टरों से पूछ लिया है और

उन्होंने कहा है कि इस में भय की कोई बात नहीं है। परन्तु तो भी कल परसों से मैं बहुत घबरा रही हूं। क्या किया जाय ? कुछ समझ में नहीं आता ।' इस से आगे मुझ से बोला नहीं गया। ननद् ने कहा—'डाक्टर चाहे सो कहें, परन्तु बीमारी ठीक नहीं दीखती। हां, ईश्वर सब संभाल लेगा। सच्चा डाक्टर और वैद्य वही है। अम्बा बाई का अनुष्ठान हो ही रहा है, उन्हें स्वयं सब की चिन्ता है। उसी पर सब छोड़ कर स्वस्थचित्त रहो। तुम धैर्य्य न छोड़ो। घर की लक्ष्मी को इस असमय में आंखों से जल नहीं बहाना चाहिए।'

अक्तूबर मास से इधर आप के मन की स्थिति कुछ और ही प्रकार की हो गई थी, इस से पूर्व, आप जब डाक्टरों से बात चीत करते, तो मानो जांच और अनुसन्धान के विचार से करते थे; परन्तु इधर उस में उदासीनता का भाग अधिक हो गया था। तो भी सारा समय नियमानुसार काम काज में ही बीतता था। पहले आप काम के समय लोगों से अधिक बात चीत न करते थे। आप अपना काम भी करते जाते, और बीच बीच में आगन्तुक की ओर देख कर, उस की बात भी सुनते जाते; दोनों काम एक साथ जारी रहते थे। परन्तु अब इस से एकदम विपरीत हो गया था। अब आप अपनी

बीमारी के सम्बन्ध में एक बात भी चिन्तायुक्त नहीं कहते थे। यदि कोई पूछ बैठता तो कह देते—'हां, चला ही चलता है। कभी अच्छे हैं, तो कभी बीमार। व्याधि तो शरीर के साथ रहती है। दवा हो रही है। कुछ दिनों में लाभ होगा ही।'

अब तक आप सब कष्ट चुपचाप सहन कर लेते थे; किसी दूसरे पर यथाशक्ति प्रकट न होने देते थे। सारा दिन लिखने पढ़ने में बीतता था। यदि शरीर के किसी भाग में बहुत अधिक कष्ट होता तो उसे दबाने या तेल लगाने के लिए कह देते। सब पीड़ा आप चुपचाप सहन कर लेते। देखने वालों को यही मालूम होता था कि मन किसी गम्भीर विचार में उलझा हुआ है; तो भी शान्त अवश्य है। मानो आप ने मानसिक सामर्थ्य के आगे शारीरिक पीड़ा का कुछ भी ज़ोर न चलने देने का निश्चय कर लिया हो। हां, बिछौने पर पड़ कर आप खांसने अवश्य लगते थे। बहुत चेष्टा करने पर भी तीन चार घण्टे से अधिक नींद न आती। आप जागते रह कर भी अपना निद्रित अवस्था में होना ही प्रकट करते, जिससे और लोगों को भी सोने के लिए थोड़ा समय मिल जाय। इस प्रकार तीन चार घण्टे सो कर सवेरे उठते और प्रातर्विधि समाप्त कर के काम में लग जाते।

दोपहर को भोजन के पश्चात् जब बातचीत करने बैठते तो प्रत्येक बात उपदेशपूर्ण और श्लेष कहते। उस में चिन्ता या निराशा का कोई भाग न होता। दिखलाने मात्र के लिए लड़कों बच्चों से भी हँस बोल लेते परन्तु मुझे ये बातें मन ही मन अच्छी नहीं मालूम होती थीं।

इसी प्रकार कई दिन बीत गये। चौदह जनवरी को सवेरे पैर में सूजन आ गई। डाक्टरों ने देख कर कहा— 'दुर्बलता के कारण रक्त नीचे न उतरने से सूजन हो गई है। इस में चिन्ता की कोई बात नहीं है।'

हम लोगों का वह सारा दिन चिन्ता में ही बीता। रात को तेल लगाते समय ननद ने कुछ भजन सुनाये। साढ़े दस बजे "स्पज़्म" का दौरा आरम्भ हुआ। बहुत प्रयत्न करने पर बड़ी कठिनता से बन्द हुआ। मेरा मन भीतर ही भीतर बैठा जाता था। मैं समझती—ईश्वर बड़े बड़े संकटों से अपने भक्तों का उद्धार करता है। उसी प्रकार मेरा भी करेगा। जिस ने करमाल की भयङ्कर बीमारी से बचाया वह अब क्यों उपेक्षा करेगा? मुझे अन्त तक आशा थी कि ईश्वर मेरे लिए ऐसा भयङ्कर प्रसंग न लावेगा और यह बीमारी अच्छी हो जायगी।

रात को तीन साढ़े तीन बजे आप को नींद आई।

ननद ने आ कर कहा—'मैं यहाँ हूं। अब तुम भी जा कर उधर घण्टे भर आराम कर लो।' मैं भी जा कर पड़ रही। लड़के ही सब कामो से निवृत्त हो कर और ईश्वर को नमस्कार कर के मैं आप के पलंग के पास गई। उसी समय आप की आंख खुलीं थीं; आप धीरे धीरे श्लोक कह रहे थे। चहरा निस्तेज और बेतरह थका हुआ मालूम होता था। पैरों की सूजन भी अधिक थी। मेरे हाथ पैर काप उठे और हृदय धड़कने लगा। तो भी मैं बैठ कर पैर दाबने लग गई। थोड़ी देर बाद उठ कर आप निवृत्त हुए और दीवानखाने में जा कर लड़के से पुस्तक सुनने लगे। साढ़े दस बजे स्नान के समय आप की दृष्टि भी पैर की सूजन की ओर गई परन्तु मैं ने कह दिया 'देर तक एक जगह बैठे रहने से वह भारी सा हो गया है।' भोजन के समय ननद ने कहा—'अब डाक्टरों की औषध बन्द कर दी जाय और काम भी कम कर दिया जाय। दिन भर पढ़ने से तबीअत भी नहीं घबराती ?' आप ने कुछ उत्तर नहीं दिया। भोजन की ओर भी आप का लक्ष्य नहीं था। बहुत देर तक ग्रास हाथ में ही रह जाता था और फिर थाली में रख दिया जाता था। मानो किसी प्रकार समय बिताया जा रहा हो। यह देख कर बात छेड़ने के लिए ननद ने कहा—'महाबलेश्वर चलनेसे

तबीअत अच्छी हो जायगी । परन्तु पढ़ाई का काम अधिक न होना चाहिए और नहीं तो जाना न जाना बराबर ही होगा ।' आप ने कहा—'मुझे रह रह कर यही आश्चर्य होता है कि तुम लोगों की समझ कैसी है क्या तुम लोग यही समझते हो कि मैं जान बूझ कर यह बीमारी बढ़ा रहा हूं ? एक तो तुम लोग पीछे से दोष न दो और दूसरे जब तक जीवन रहे मनुष्य को उद्योग न छोड़ना चाहिए । इन्हीं दोनों विचारों से जो दवा मुझे दी जाती है वही मैं पी लेता हूं । नहीं तो दवा और डाक्टर से क्या हो सकता है ? बहुत अधिक कष्ट को कम करने के लिए यह तो साधनमात्र है और विश्रान्ति का अर्थ क्या है ? जिस पढ़ने में मन लगता है, समाधान होता है और छोटी मोटी वेदना योंही भूल जाती है उसे छोड़ने से क्या विश्रान्ति मिलेगी ? बिना कोई काम किये निरर्थक जीवन बिताने का समय यदि आ जाय तो तत्काल ही अन्त हो जाना उस से कहीं अच्छा है ।' जब आप ने देख लिया कि सब लोगों का भोजन हो गया तो आप उठते हुए मेरी ओर देख और हँस कर बोले—'आज तुम्हारा भोजन अच्छा नहीं बना इसीलिये मुझे भी भूख नहीं लगी ।"

आप की अन्तिम बातों के कारण मेरा मन बहुत

और लीन हूं। राजों महाराजों और जागीरदारों की स्त्रियां सन्तति, सम्पत्ति और अधिकार-वैभव में चाहे कितनी ही बड़ी हों, तो भी मुझसे अधिक सुखी नहीं हैं। आपकी प्राप्ति से मुझे जो समाधान है उसकी उपमा नहीं है। ईश्वर इस समय रक्षा करने में तू ही समर्थ है।

इसी प्रकार के विचार मेरे मन में उठते और मुझे कुछ चैन नहीं पड़ता था। इधर आपकी स्थिति में भी कुछ विलक्षण विशेषता होगई थी। आन्तरिक सुख दुःख या आशा निराशा पहले कभी आपके चहरे पर न दिखाई देती थी। परन्तु अब आप उन सब को प्रयत्न पूर्वक दबाते थे। आपकी इच्छा होती थी कि मैं चुपचाप आपके पास बैठी रहूं, कहीं इधर उधर न जाऊं। यद्यपि मैं भी यही चाहती थी, तो भी क्षण क्षण पर मन की बदलनेवाली स्थिति दबाने और छिपाने के लिए मुझे बीच बीच में उठना पड़ता था। जब मैं उठने लगती तो मेरे हाथों की उंगली पकड़ कर आप मुझे बैठा लेते और कहते—'कहीं जाने की जरूरत नहीं है। अब कहां जाती हो? अभी तुम बीमारी से उठी हो; व्यर्थ नीचे ऊपर जाने आने का कष्ट न करो। जो काम हो वह लड़कों से कह दो, या किसी नौकर को ही बुला कर यहां खड़ा रहने के लिए कह दो जिससे तुम्हें घड़ी घड़ी न जाना पड़े।'

मैं भी 'अच्छा' कह कर चुपचाप वहीं बैठ जाती। परन्तु मन की स्थिति और भी विलक्षण हो जाती। सारे दिन मैं आपके पास ही बैठ कर बात चीत करती, परन्तु जहां तक हो सकता बोलते समय आप की ओर न देखती। जहां तक होता देखा देखी होने का अवसर न आने देती।

आपके मन की स्थिति भी मुझे कुछ ऐसी ही मालूम होती थी। परस्पर देखा देखी होने से शायद आप का मन दृढ़ न रह सकता, तो भला मेरी कौन गिनती है? हम दोनो ही मन की आन्तरिक दशा को परस्पर एक दूसरे पर प्रकट न करके बड़े ही कष्ट से दिन बिताते थे, मैं कैसी पागल थी! अब भी मुझे इस बीमारी से अच्छे होने की आशा लगी रही; इसी आशा में मेरे घंटों बीत जाते, और उतना ही समय मुझे सुखपूर्ण मालूम होता था।

ईश्वर की इच्छा कुछ और ही थी! उस की मुझे कल्पना भी न थी। अन्तःकरण छेद डालने वाली चिन्ता में भी जिस स्थिति को सुख मानती थी, मेरा वह सुख पूरे २४ घण्टे भी न ठहरा! जिस देदीप्यमान तेजोमय सौभाग्यसूर्य्य के प्रकाश में मैं ने बड़े आनन्द से २७ वर्ष बिताये थे, वह प्रत्यक्ष सेवा कराने वाले दिव्य सूर्यरूपी

चरण मुझे अत्यन्त दुःखरूपी निबिड़ अन्धकार में छोड़ कर स्वयं अस्त हो गये—चारों ओर घोर अन्धकार छा गया !

शिव ! शिव !! मैं कितनी भाग्यहीना हूं !!!